पृथ्वीराज चौहान

लेखक—

श्रीयुत विश्वनाथ पोखरैल 'विश्व'

प्रकाशक—

चौधरी एण्ड सन्स
पुस्तक विक्रेता तथा प्रकाशक
बनारस सिटी

द्वितीय संस्करण | मूल्य १) | सन् १९२९

1929

प्रकाशक—
चौधरी एण्ड सन्स
बुकसेलर्स एण्ड पब्लिशर्स
लाजपतरायरोड बनारस

मुद्रक—
महादेव प्रसाद द्वारा
अर्जुन प्रेस,
कबीर चौरा काशी

* ओ३म् *

वीर चौहान

वा

पृथ्वीराज

(बाल्यकाल)

-:o<>o:-

प्रथम परिच्छेद।

—:o***o:—

यों तो भारत वर्ष में अनेकों वीरपुंगव नरश्रेष्ठ महात्मा ऐसे होगये हैं जिनका वर्णन होनहीं होसकता किन्तु हमारे इसपुस्तकके चरित्रनायक वीर पृथ्वीराज एक विचित्र ही प्रकार के वीर थे। महाकवि चन्द वरदाई ने अपने पृथ्वीराजरासो में इनकी वीरता को जैसी ओजस्विनी भाषा में वर्णन किया है, उसके पढ़ने से शरीर के रोएँ खड़े हो जाते हैं, कायरों के हृदय में भी वीरता की लहर लहराने लग जाती है। टाड राजस्थान और रासो के मतानुसार हमारे चरित्र नायक वीर चौहान पृथ्वीराज का जन्म, प्रसिद्ध-चौहान वंश में विक्रमीय सम्वत ११९५ वैशाखवदी बृहस्पतिवार को दिल्लीपति अनंगपाल की कनिष्ठा कन्या कमलावती के गर्भ से हुआ था। इनके पिता सोमेश्वर जी चौहान थे। चौहान वंश के इतिहास में इनकी वीरता धीरता

कीर्तिकला आदि स्वर्णाक्षरों से अंकित हैं। इनकी राजधानी अजमेर नगर थी। इनकी न्यायनीति शासनप्रणाली प्रशंसनीय थी। उनके शासन काल में अजमेर का वैभव, प्रतापसूर्य, पूर्णकला के साथ अपनी मध्यान्ह रेखा में पहुँचा हुआ था। अस्तु उनकी वीरता का उस समय यहाँ तक डंका वजा हुआ था कि दिल्लीश्वर अनंगपाल ने इनसे सहायता मांगी। इसका कारण यह था कि उस समय अनंगपाल और कमधज्ज राय दोनों में लड़ाई ठन गई थी। और कन्नौज के राजा विजयपाल कमधज्ज राय की ओर से सहायता को खड़े होगये थे। यह देख अनंगपाल ने भी अजमेराधिपति सोमेश्वर जी चौहान से सहायता मांगी और उन्होंने भी वह वीरता दिखाई कि दुश्मन के दांत खट्टे होगये। अतः सोमेश्वर जी की असीम वीरता पर मुग्ध हो अनंगपाल ने अपनी कन्या कमलावजी का व्याह उनसे कर दिया। अतः इन्हीं वीर सोमेश्वर और कमलावती के औरसजात पुत्र हमारे चरित्र नायक वीर पृथ्वीराज थे।

चन्द कवि ने अपने ग्रन्थ रासो में लिखा है कि चौहानलोग पहले चहुवान कहाते थे, यह सात आठ सौ वर्ष पहले की बात है। इनकी कथा यों है कि कोई चहुवान जी बड़े वीर महात्मा थे। वे एक यज्ञ कुँड में से, जो कि राक्षसों के नाश के लिये किया गया था, आपही उत्पन्न हुए थे। ईश्वर जाने यह बात कहाँ तक सत्य है। अब इनके बाद कोई लगभग १७३ वीं पीढ़ी

में जोकर बीसलदेव नाम के राजा हुए, कहीं २ पर इनका नाम विशालदेव भी शायद लोगों ने लिखा है। इनका चरित्र अच्छा न था, ये पूरे विषयी लम्पट थे। इसीसे इनके शासनकाल की कोई विशेष घटना, सिवाय उपद्रव उत्पात के नहीं मालूम होती अजमेर नगरी इनके समय में सदा अशान्ति का केन्द्र ही रही। भला जो राजा विषयी दुर्गुणी हो उसकी प्रजा किस प्रकार सुखानुभव कर सकती है। बीसलदेव के पुत्र सारंगदेव--सारंगदेव के आना, और आना के जयसिंह हुए। अस्तु इन्हीं जयसिंह के पुत्र को चंदवरदाई, पृथ्वीराज के दादा बताते हैं। जो हो--

बहुत खोज करने पर भी पृथ्वीराज के बाल्यावस्था की कोई भी खास घटना दृष्टिगत नहीं होती। और न उस समय कोई ऐसे इतिहास वेत्ता ही थे जो देश की वास्तविक परिस्थिति का दिग्दर्शन कराते। केवल देश के सुधार करने और राजकुमारों के मन में वीर भाव भरने का भार इन्हीं भट्ट कवियों पर ही रहता था। इसके अतिरिक्त उस समय न तो कोई भारी पंडित विद्वान ही थे, और न शिक्षा आदि का कोई विशेष प्रचार ही था। हाँ युद्ध विद्या का विशेष प्रचार था। यही कारण है कि उस समय के क्षत्रिय वीर विशेष रणप्रिय, रणकुशल और वीर होते थे। अस्तु, हमारे चरित्र नायक वीर पृथ्वीराज का धनुर्विद्या में निपुण होना, शब्द वेधी बाण मारना असि संचालन में सिद्ध हस्त दिखाई देना इत्यादि २ इस बात

के ज्वलन्त दृष्टान्त हैं।

"होनहार विरवान के होत चीकने पात" यह कहावत पृथ्वीराज पर बाल्यकाल से ही परिपूर्ण रूप से घटती थी। आरंभकाल से ही इनके अंगों में वीरता शूरता के लक्षण दिखाई देने लग गये थे। युद्ध शिक्षा इन्होंने अपने गुरु श्रीराम जी से पायी थी, जो कि इस विद्या के पूरे पंडित थे।

छोटी अवस्थामें वे प्रायःअपने साथियों-समवयस्क बालकों को इकट्ठा कर युद्ध के खेल खेला करते थे। पृथ्वीराज के बाल्य कालके मित्र-कन्ह, निठुरराय, जैतसिंह परमार, कवि चंदवरदाई, दाहिम्मराय, हरसिंह, अर्जुनराय, सारंगराव, कैमास आदि ३६ सामन्त थे। जिनके साथ ये नित्य गढ़-विजय, सेना संचालन इत्यादि युद्ध-क्रीड़ा करते थे। बस पाठक यही पृथ्वीराज की शिक्षा थी। और यही उनके शस्त्रज्ञान का अभ्यास था।

उस समय गुजरात में भोलाराय भीमदेव सोलंकी राज्य-शासन करते थे। ये भी बड़े ही वीर थे। पहले ही से पृथ्वीराज के पिता और इनमें अनबन होती चली आती थी, उसपर सोमेश्वर जी की वीरता और राज्य विस्तार देख भीम देव और भी ईर्ष्या की आग से मन ही मन जलने लगे। कारण कि सोमेश्वर जी ने अपने राज्य का विस्तार गुजरात की सीमा तक फैला दिया था। भीम देव को छोड़ अन्य बहुत से छोटे मोटे राजाओं ने इनकी आधीनता स्वीकार कर ली थी। अब पृथ्वीराजकी बल वीरता औरसाहसके समाचारने तो और भी

भीमदेव के मन में छिपी हुई डाह की आग भड़का दी। यहाँ तक कि उन्होंने पृथ्वीराज को पकड़ने के लिये गुप्तचर भी नियत कर दिये थे। वे अचानक एक दिन शिकार खेलते २ गुजरात की सीमा तक चले गये, जांसूसों ने उनपर आक्रमण भी किया किन्तु वे भाग्यबल से उनके हाथ से बच गये।

जो कुछ हो अब धीरे २ पृथ्वीराज की वीरता में विलक्षण प्रतिभा देख कर उनके पिता ने उन्हें युवराज पद दे दिया। इस समय पृथ्वीराज की अवस्था केवल तेरह वर्ष की थी। युवराज पद पर बैठते ही उनकी बल बुद्धि ने और भी उन्नति की। दिन पर दिन उनकी इस तरह वृद्धि देख शत्रुलोग और भी मन ही मन में मसोसने लगे।

भारत की श्री वृद्धि और धन वैभव पर उसी समय से विदेशियों की लुब्ध दृष्टि लगी थी। प्रायः उन लोगों के गुप्तचर भेष बदल कर साधु संन्यासियों के रूप में नगर २ घूमते तथा वहां के सब समाचार संग्रह कर मालिक के पास लिख भेजते इसी प्रकार एक रोशन अली नाम का यवन, फकीरवेष में प्रजा को छल कपट से ठग कर रुपया कमाने के साथ ही राज संबन्धी गुप्त भेदों का भी पता लगा रहा था। पहले तो पृथ्वी-राज ने उसे सीधी तरह समझा कर भगाना चाहा, पर इस तरह जब उसने अपनी बेढंगी चाल न छोड़ी तब लाचार उसकी आंगुली कटवा कर उसे देश से निकाल दिया। वहां से रोशन अली ने जाकर अपने अरब के सरदार मीर को पृथ्वी

राज के विरुद्ध उभाड़ा। पर सेना की कमी ने उसे लाचार कर दिया। परन्तु फिर भी वहुत उत्तेजित किये जाने पर वह सौदागर के वेप में घोड़ों को वेचने के वहाने अजमेर चला आया। इसके सङ्ग में और भी कतिपय अरव सौदागर आये थे। पृथ्वीराज के हाथ उसने एक वढ़िया घोड़ा वेचा भी। कहते हैं इस घोड़ा का खरीदना वड़ा ही अशुभ हुआ। उसी दिन शहर में एक वड़ा भारी भूकम्प आया; और एक प्रसिद्ध गढ़ भूमि में धँस गया। इस हलचल में मीर ने अपना मतलव सिद्ध करना चाहा किन्तु पृथ्वीराज ने उसे इस तरह पैरों तले कुचला कि वह विवश होकर प्राण भय से भाग खड़ा हुआ। वस पाठक! पृथ्वीराज का यही वाल्यजीवन है।

—:o⊂⊃o:—

दूसरा परिच्छेद।

(कलह द्वारा सारंगदेव के पुत्रों की मृत्यु)

—o:⊂⊃:o—

अव पृथ्वीराज कार्य क्षेत्र में उत्तीर्ण होकर अपनी वीरता की वानगी दिखाने लगे। उनके अतुल वल विक्रम की प्रशंसा से देश २ गूंज उठा। कितने ही इस प्रशंसावाद से अप्रसन्न हुए और कितने ही प्रसन्न। इन अप्रसन्न होने वालों में भीमदेव का ही पहला नम्वर था। सारङ्गदेव नाम के इनके एक भाई भी थे, सारङ्गदेव के आठपुत्र थे। सवसे वड़ा प्रतापसिंह था।

पिता की गद्दी पर बैठते ही वह नाना प्रकार से प्रजा को कष्ट पहुँचाने लगा। परिणाम यह हुआ कि भीमदेव उससे नाराज होगये। और उसने दिन दहाड़े उनके विरुद्ध खड़े हो राज्य में लूट मार मचानी आरम्भ कर दी। भीमदेव इसे दमन करने के लिये सेना से काम लेने लगे। और उधर प्रतापसिंह की ओर से भी इन्हें दवाने की पूरी चेष्टा होने लगी। एक समय सारङ्गदेव के पुत्रों ने भीमदेव के हाथी को पीलवान सहित मार डाला, इससे भीमदेव और भी बिगड़ गये। अब वहां रहना असह्य जान सारङ्गदेव के आठों पुत्रों ने अजमेर आकर पृथ्वी राज की शरण ली।

सदा से क्षत्रिय वीरों का यह धर्म है कि वे कभी अपनी शरण में आये हुए को विमुख नहीं करते। अतः पृथ्वीराज ने भी बड़े आदर से उन्हें अपने यहां स्थान दे दिया। वे वहां रह तो गये पर वहां भी उनकी निभ नहीं सकी। एक दिन दरवार में इन आठों भाइयों में से एक ने मोंछो पर ताव दिया। इसको सह न सकने के कारण कन्ह ने उसी समय आठों को मार डाला। कन्हके इस दुर्व्यवहार से पृथ्वीराज को बड़ा कष्ट हुआ। परन्तु करें तो क्या—कन्हके समान, वीर, सक्ति-वान, पराक्रमी पुरुष को त्यागना भी उन्हों ने उचित न समझा। अतः उन्हों ने कन्हके नेत्रों पर सोने की पट्टी बँधवा कर पृथ्वी-राज ने पुनः अपने दरवार में बुलालिया, कहते हैं यह पट्टी केवल सोने और युद्ध के समय उनकी आँखों से अलग होती थी।

आह! अब भीमदेव के क्रोध का क्या कहना! अपने आठों भतीजों का इस प्रकार मारा जाना सुनते ही वे एक दमआपेसे बाहर हो गये। डाह की अग्नि से उनका सारा शरीर धधकने लगा। अतः पृथ्वीराज से बदला लेने का यह उपयुक्त अवसर देख उन्होंने अपने निरीह देश भाइयों के रक्त से अपनी ईर्ष्याग्नि को शान्त करने के लिये अजमेर पर चढ़ाई करने का मन में निश्चय कर लिया। किन्तु उस समय उनकी यह इच्छा पूर्ण न हो सकी, कारण कि वर्षाकाल ने उनके इस काम में बाधा खड़ी कर दी। जो कुछ हो, किन्तु फिर भी वह इस घात में लगे रहे कि कब मौका पाऊँ और कब इन्हे नीचा दिखाऊँ।

बस पाठक! भारत के अधःपतन की नींव यहीं से पड़ती है। यद्यपि आपस की अनबन आज कल्ह की भाँति इतनी अधिक बढ़ नहीं गई थी। तथापि उसका आधिपत्य धीरे २ भारत में बढ़ता जा रहा था।

जिस समय का वर्णन हम कर रहे हैं, उस समय मेवाड़में समरसिंह, माड़वार में नाहरराय परिहार, आबू में सलख (जैत पवार) और गुजरात में चालुक्य (सोलंकी) भीमदेव राज्य करते थे।

चंद कवि लिखते हैं कि एक बार छोटी अवस्था में दिल्ली में पृथ्वीराज को देखकर नाहर राय उनके रूप गुण पर इतने मुग्ध हुए कि उन्होंने उसीसमय अपनी कन्या पृथ्वीराजको व्याह देने का बचन दे दिया। यह भी उसी समय निश्चय होगया कि

जिस समय पृथ्वीराज की उमर सोलह वर्ष की हो जाय उसी समय उनका ब्याह हो जायगा। किन्तु समय आने पर नाहर राय के विचार बदल गये कन्या देने से उन्होंने नाहीं कर दी। समझ में नहीं आता कि ऐसा क्यों किया? मालूम होता है यह भी शत्रुओं की करणी थी कि उन्होंने अपनी वाग्दत्ता कन्याका विवाह संबंध पृथ्वीराज से तोड़ लिया। जो हो, जब दूत द्वारा यह समाचार सोमेश्वर जी ने सुना तो उन्हें बहुत बुरा लगा। उन्होंने और अन्य सामन्तों ने इसमें अपना बड़ा भारी अपमान समझा। सर्व सम्मति से यही निश्चय हुआ कि नाहरराय को परास्त कर बल पूर्वक विवाह कर लेना चाहिए। अतः उसी समय सोमेश्वर ने पृथ्वीराज को मण्डोवर पर चढ़ाई करने की आज्ञा देदी। पिता की आज्ञा पातेही पृथ्वीराज ने एक बड़ी भारी सेना के साथ मण्डोवर के किले को घेर लिया। नाहर राय की ओर से पहले तो मीना जाति के सरदार पर्वतराय सेनापति बन बड़ी भारी सेना लेकर रणक्षेत्र में आ डटे, दोनों ओर की सेना खूब जी तोड़कर लड़ी। बड़ी भयंकर मार काट मची। अन्त में कन्ह चौहान के हाथों पर्वत राय मार डाले गये। इसके बाद स्वयं नाहर राय युद्धस्थल में उतरे। किन्तु इस बार भी जयमाल पृथ्वीराजकेही के गलेमें पड़ी। पृथ्वीराज के भाले से घायल होकर नाहरराय, घोड़े पर से धरती पर गिर पड़े। कहते हैं, यह युद्ध बराबर पांच दिवस तक होता रहा। अन्त को नाहरराय भी युद्ध के मैदान से प्राण लेकर

भाग खड़े हुए।

वहाँसे भागकर नाहरराय ने अपने एक गिरनार नामकगाँव में आश्रय लिया। अब वे अपनी भूल पर पछताने लगे। और उसके प्रतिशोध स्वरूप में व्यर्थ हजारों निरीह प्राणियों का रक्त बहाकर आखिर को उन्होंने अपनी कन्या जामवन्ती का विवाह पृथ्वीराज से कर दिया। पृथ्वीराज जामवन्ती को लेकर अजमेर लौट आये। सोमेश्वर जी ने अपने विजयी पुत्र का पुत्रवधू सहित बड़े प्रेम से स्वागत किया।

तीसरा प्रकरण।

पाठकों को मालूम होगा कि सोमेश्वर जी चौहान सदा प्रजा का पुत्रवत पालन करना, राज्य को बढ़ाने में लगे रहना, अपना प्रधान कर्त्तव्य समझते थे। इस कारण वह सदा अपने सरदारों के साथ युद्ध साज से सजे रहते थे। उनके व्यवहार से प्रजा सदा संतुष्ट रहती थी। कठोरता वा किसी प्रकार का अत्याचार उन पर कभी होने नहीं पाता था।

अस्तु, जामवती को ब्याह कर पृथ्वीराज के लौट आते ही सोमेश्वर जी का ध्यान पुनः राज्य विस्तार की ओर झुक पड़ा। उस समय उनके राज्य में एक प्रकार से शान्ति विराज रही थी। उनके कामों पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है वे शान्ति के विरोधी न थे। हाँ जब सीधी तरह से किसी प्रकार

भी काम निकलने की बारी नहीं आती थी तब वे लाचार युद्ध के लिये खड़े होते थे।

एक बार ऐसा हुआ कि मेवाड़ के राजा मुगदल राय, जो कि सोमेश्वर जी के करद राजाओं में से थे, इन्हें कर नहीं देते थे। सोमेश्वरजी ने उन्हें दूत भेज कर नाना प्रकार से समझाया बुझाया, किन्तु तब भी वे कर देने पर राजी नहीं हुए। तब विवश होकर सोमेश्वर जी ने उन पर आक्रमण तो कर दिया किन्तु पुनः राज्य की सरहद्द पर जाकर वे अपने मनमें सोचने लगे, कि, व्यर्थ ही इतने मनुष्यों का रक्तपात होगा, इससे तो अच्छा है कि यदि बातों ही से काम बन जाता। अतः ऐसा मन में विचार कर फिर भी दूत द्वारा मुगदल राय को समझाया। किन्तु मुगदलराय अपने हठ पर अड़े रहे। तब वे बड़े ही सात पाँच में पड़े कि अब क्या करें। वे चाहते थे कि सर्प भी न मरे और लाठी भी न टूटे। व्यर्थ रक्तपात मचाकर उससे कर लेना उचित है या इतने निरीह प्राणियों का प्राण बचाना? अतः इसकी वे कुछ भी मीमांसा न कर सके, लाचार उन्होंने एक पत्र पृथ्वीराज को लिख कर सब बातें समझा दीं। पृथ्वीराज उसी समय रातों रात सेना लेकर मेवाड़ पर चढ़ दौड़े। इस प्रकार एकाएक आक्रमण होने से सभी घबड़ा उठे, बहुत ही शीघ्र मुगदल राय की सेना नष्ट भ्रष्ट हो गई, और मुगदल राय पकड़ कर कारागार में डाल दिये गये। इस प्रकार मेवाड़ राज्य को अपने आधीन बनाकर सोमेश्वर जी ने वहाँ अपनी विजय पताका फहरायी।

चौथा प्रकरण।

मुहम्मद गोरी।

शायद पाठकों को ज्ञात होगा कि महाराज युधिष्ठिर की राजधानी इन्द्रप्रस्थ ही आज कल दिल्ली के नाम से प्रसिद्ध है। जिस समय की बात हम लिख रहे हैं उस समय उसी दिल्ली नगरी मे अनंग पाल राजा राज्य करते थे। इनके शासन काल में भी दिल्ली की अवस्था बड़ी ही उन्नत और ऐश्वर्यमयी थी। टाड साहब का कथन है कि इन्द्र प्रस्थ में महाराज परीक्षित से लेकर राजा जयपाल तक बराबर ३६ राजाओं ने राज्य किया। एक बार युद्ध में कुमायूं के राजा सुखवन्त ने जयपाल को मार डाला। तबसे बराबर चौदह वर्ष तक सुखवन्त ही का इन्द्रप्रस्थ में आधिपत्य रहा। इसके बाद महाराज विक्रमादित्य ने सुखवन्त से इन्द्रप्रस्थ छीन लिया। किन्तु उनके समय में भी दिल्ली वा इन्द्रप्रस्थ की विशेष उन्नति नहीं हुई। कारण कि इन्होंने भी इसकी ओर कुछ ध्यान नहीं दिया, और अपनी राजधानी उन्होंने उज्जैन में स्थापित की। बस तभी से बराबर दस सौ वर्ष तक इन्द्र प्रस्थ का राज्य सिंहासन रिक्त रहा और वह ऐश्वर्यमयी इन्द्रप्रस्थ नगरी एक दम श्मशान भूमि बन गयी। ऐसेही अनंगपाल ने अपनी चेष्टा से इन्द्रप्रस्थ पर अधिकार जमाया, और उसका नाम "दिल्ली" रखा।

इतिहास वेत्ता पुराने समय की दिल्ली आज कल्ह की दिल्ली से दो मील दक्षिण की ओर बसी हुई बताते हैं। इसके पश्चात् जिस प्रकार अन्य २ शासक यहां होते गये, उसी प्रकार इसमें परिवर्तन भी होता गया।

अस्तु जो हो सन् ७३२ में तोमर वंश के राजा अनंगपाल की दिल्ली में तूती बोलने लग गयी। इन्होंने भी अपनी राजधानी अलग ही बसायी। इनके संबंध की एक विचित्र घटना का उल्लेख पृथ्वीराज रासो में पाया जाता है। वह यह कि दिल्ली नगरी निर्माण कराते समय अनंगपाल के कुल पुरोहित ने एक कील धरती पर गाड़ कर कहा कि जब तक यह कील उखाड़ी न जायगी तब तक तुम्हारे वंश धरों का राज्य दिल्ली में सदा अटल रहेगा। कारण कि इस कील की नोक पाताल में शेष नाग के मस्तक पर जा लगी है। किन्तु पुरोहित जी के इस बचन पर अनंगपाल विश्वास न कर सके। अतः उन्होंने कील उखाड़ने की आज्ञा दे दी। कील उखाड़ी गई सबों ने देखा—उसमें रक्त लगा हुआ था। अब उन्हें अपनी मूर्खता पर बड़ा दुःख और पश्चात्ताप हुआ। अतः उन्होंने उसी समय पुरोहित को बुलवाया और बड़ी नम्रतापूर्वक प्रार्थना की कि महाराज! क्षमा करें, मुझसे बड़ी भूल हो गई कि जो आपकी बातों पर विश्वास न किया। अब पुनः कृपाकर इस कील को गाड़ दें। परन्तु पुरोहित इस पर राजी नहीं हुए, बोले शोक! मैंने चाहा था कि तुम्हारा राज्य सदा अचल रहे, किन्तु ईश्वर

नहीं चाहते हैं कि ऐसा हो। अब तुम्हारे पश्चात् चौहान वंश वाले यहाँ राज्य करेंगे। फिर यवनों का प्रबल शासन होगा। अस्तु,

अब हम पुनः पृथ्वीराज की जीवनी की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं। अब वे पूर्ण रूप से युवावस्था को प्राप्त हो चुके थे। उस समय उनकी ठीक सोलह वर्ष की अवस्था हो गयी थी। अपने रहते हुए भी सोमेश्वर जी ने राज्य का समस्त भार पृथ्वीराज पर ही दे रखा था क्योंकि उन्होंने भली भाँति समझ लिया था कि पुत्र सब प्रकार से योग्य, वीर धीर, साहसी है।

पृथ्वीराज को आखेट, बड़ाही प्रिय था। साथही सौंदर्य के उपासक और विलास प्रिय भी वे कम नहीं थे। कहते हैंकि एक बार ऐसा संयोग हुआ कि, जब नागौर के समीप खट्टूपुर में पृथ्वीराज डेरा डाल, शिकार खेल रहे थे, ऐसे ही समय, चंदाई के कथनानुसार मुहम्मद गोरी का चचेरा भाई मीर हुसेन नाम का गजनवी मुसल्मान, एक चित्ररेखा नाम की वेश्या को साथ ले उनके आश्रम में आ पहुंचा। पूछने पर ज्ञात हुआ कि शहाबुद्दीन चित्ररेखा पर विशेष अनुरक्त था। कारण यह थाकि वह जिस प्रकार रूपवती थी उसी प्रकार गुणवती थी। गाने बजाने में वह अपनी जोड़ी नहीं रखती थी। परन्तु चित्र रेखा ने शहाबुद्दीन के प्रेम को तुच्छ दृष्टि से देखा, कारण गुणी, गुणी ही को चाहता है। शहाबुद्दीन गुणी न था, गुण के ग्रहाकथन के

ग्राहक नहीं होते। किन्तु इधर मीर-हुसेन रूपवान और गुण-वान दोनों ही था। इसी कारण चित्र रेखा का प्रेम मीर हुसेन पर अधिक झुक पड़ा। मीर हुसेन भी उसे हृदय से चाहता था फिर क्या पूछना-सोने में सुगंध हो गई। दोनों आनन्द करने लगे। किन्तु शहाबुद्दीन को शीघ्रही उन दोनों के गुप्त प्रेम का हाल मालूम हो गया। उसने उसी समय डरा धमका कर उसको इससे रोकना चाहा। पर दोनों प्रेमी अभिन्न हृदय थे। लाचार गोरी के भय से, मीर हुसेन भाग कर सीधे पृथ्वीराज की शरण में आ गया। क्षत्रिय वीर कभी शरण में आये हुए को दूर नहीं करते। अतःसर्व सम्मति से पृथ्वीराज ने भी यही निश्चय किया कि शरणागत की रक्षा करना ही वीरों का कर्त्तव्य है। बस उन्होंने उसी समय मीर हुसेन को सम्मान पूर्वक अपने दर्बार में स्थान देकर हाँसी और हिसार के परगने भी जागीर में दे दिये।

अब यहाँ पर प्रत्येक ऐतिहासकों का अलगश्मत है। चंद वरदाई इसीचित्ररेखा वेश्या को ही शहाबुद्दीन को पृथ्वीराज से वैर बांधने का प्रधान कारण लिखते हैं परन्तु अन्य ऐतिहासिक लोग चित्ररेखा के विषय में कुछ न कह कर यही लिखते हैं कि भारतवर्ष में इसलाम धर्म का प्रचार करना, और इस पर विदेशियों की लुब्ध दृष्टि ही, शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज में युद्ध छिड़ने का प्रधान कारण है। अस्तु—

ज्यों ही मीर हुसेन गजनी से निकला त्योंही शहाबुद्दीन के

कुछ वेश धारी दूत लोग भी इस बात का पता लगाने के लिये उसके पीछे२ हो लिये कि देखें भारत में जाकर यह क्या करता है और भारतवासी भी इसके साथ कैसा व्यवहार करते हैं,। अतःदूत लोग मीर के प्रति पृथ्वीराज का उदारता पूर्ण सदय व्यवहार देख, भारत के अन्य कितने ही स्थानों का पर्यटन करते हुए, गजनी लौट आये और शहाबुद्दीन को सब बातें विस्तार पूर्वक कह सुनायी। यह सब समाचार सुन कर उसका हृदय विचलित होगया उसने उसी समय अपने सर—दारों को बुला कर सम्मति ली। इसके बाद यह निश्चय हुआ कि किसी को भेज कर मीर हुसेन को यह समझाया जाय कि वह चित्र रेखा को देना स्वीकार करे तो उसका अपराध क्षमा होजायगा और वह पुनःआनन्द पूर्वक अपने देश में आ-कर रह सकता है। अस्तु इसी के अनुसार अरबखां ने जाकर मीर से सब बातें समझा कर कही। किन्तु मीर इसपर राजी न हुआ। तब अन्त में उसने शहाबुद्दीन का पत्र जो पृथ्वीराज के नाम से था, पृथ्वीराज के सामने उपस्थित किया। उसमें लिखा था-"तुम फौरन मीर हुसेन को अपने राज्य से निकाल दो। नहीं तो तुम्हारे हक में अच्छा न होगा।

पत्र पढ़कर पृथ्वीराज और अन्य सब के सब सभासामन्त गए क्रोध से कांप उठे। सबों की यही राय हुई कि शरणागत को त्याग देना क्षत्रिय धर्म से विरुद्ध है। अतः हम मीरहुसेन को नहीं निकाल सकते,इसके लिये हम नहीं डरते,मुहम्मदगोरी जो चाहे करे।

अस्तु दूतों ने लौट आकर सब हाल शहाबुद्दीन को कह सुनाया। उस समय वह अपने एकान्त स्थान में एक मुईनुद्दीन नामक ईश्वर भक्त के साथ बैठा हुआ किसी विषय में विचार कर रहा था। अतः दूतों से पृथ्वीराज सम्बन्धी सब समाचार सुन शहाबुद्दीन ने उसी समय अपने सब सरदार तातार खाँ, मीर कमान, खुरासान खाँ आदि को बुलाकर यह सलाह करनी आरम्भ की कि अब पृथ्वीराज से इस अपमान का बदला किस प्रकार लिया जाये। तातार खाँ ने भारत पर आक्रमण करने का विचार प्रगट किया। किन्तु खुरासान ने बीच ही में रोक कर कहा कि नहीं २ एक ऐसे देश पर जिसके हरेक स्थान से हम अनजान हैं, एकाएक हमला कर बैठना बिलकुल मूर्खता है। दूत लोगों ने भी उसकी बातों का समर्थन किया और कहा कि पृथ्वीराज और उसके सामन्त-सैनिकगण कोई साधारण पुरुष नहीं हैं। अतः इस काम को बहुत सोच विचार के करना चाहिये।

शहाबुद्दीन कुछ समय तक चुपचाप बैठा रहा। किसी के मुंह से कोई शब्द तक न निकला। तब अन्त में शहाबुद्दीन ने कुतुबुद्दीन को लक्ष्य करके कहा-"बेहतर है तुम एकबार हिन्दुस्तान की हालत ठीक २ बयान कर जाओ।"

उर्दू किताब फरिश्ता में लिखा है, कि कुतुबुद्दीन बड़ा ही चतुर बुद्धिमान वीर और होनहार था। वह स्वभावतः दयालु उदार हृदय, दाता और धर्मज्ञ था। अतः उसने नम्रतापूर्वक

२

कहना आरम्भ किया—"हिन्दुस्तान याने भारतवर्ष एक बड़ा ही अजीब वो ग़रीब और अज़ीमुश्शान वाला मुल्क है। मालूम होता है खोदांताला ने अपनी सारी कारीगरी खर्च कर इसे सारी खूबसूरती और बिहिश्त के सामानों का खजाना बनाया है। दुनियां के पर्दे में इसकी शानी का कोई भी मुल्क नहीं है। यह भारतवर्ष नहीं दूसरा विहिश्त है।

शहाबुद्दीन ने फिर पूछा—"तब तुम विहिश्त से लौट क्यों आये।

दूत ने कहा—राह दिखाने आया हूं, फिर साथ ही लौट जाऊँगा।

शहाबुद्दीन ने फिर कहा—"अच्छा अब यह बताओ कि वहाँ से तुम क्या २ देख आये?"

दूत बोला—"जहां पनाह! बहुत कुछ देख आया हूं जिसका वर्णन करना भी असंभव है। यमुना तीर पर बसी हुई दिल्ली की शोभा अपूर्व देखी, जिसके आगे स्वर्ग भी मात है। अनेकों मंदिर, ऊँचे २ सुन्दर राजमहल, जयस्तम्भ, वहां शोभा पा रहे हैं। धन जन और ऐश्वर्य से भरी पूरी दिल्ली बड़ी ही भली देख पड़ती है। वहां अनंगपाल नाम का राजा राज्य करता है, वह पृथ्वीराज का नाना और वैसाही वीर, धीर साहसी, युद्ध में निपुण और प्रजावत्सल है। नाना प्रकार के कला कौशल विद्या से भारत समृद्धिवान हो रहा है। फिर पृथ्वीराज की राजधानी अजमेर की तो बात ही निराली है। उसे तो साक्षात् इन्द्रलोक ही कहिये।

कुतुबुद्दीन की बात समाप्त होते ही उसने पुनः दूसरे से पूछा। उसने कहा—"मैं लगभग समस्त भारत वर्ष घूम आया हूं। यह काम मैंने सन्यासी के वेश में ही कर डाला। मैं साधु के वेश में नगर २ ग्राम २ घूमता रहा; राजा प्रजा वहां के सबों से मिल कर उनके आचार विचार चाल व्यवहार और धर्म कर्म को मैंने भली भांति समझ लिया है। उसकी सभी बातें वास्तव में बड़ी ही अद्भुत हैं। कोई मूर्ति पूजा में मग्न है। कोई शिला को ही ईश्वर समझ कर पूजता है। कोई नदी, कोई वृक्ष, कोई आँख मूंद कर एकान्त में तपस्या करता है, कोई जंगलों पहाड़ों में ध्यान लगाता है, कोई हिंसा मत करो, हिंसा पाप है, कहकर लोगों को उपदेश देता फिरता है, कोई नर बलि पशुबलि को ही ईश्वर प्राप्ति का मुख्य साधन समझता है। धर्म भी वहाँ बहुत से हैं जैसे शाक्त, शिव, वैष्णव बौद्ध, जैनी आदि की कोई गिन्ती ही नहीं है। कोई देश तो मैंने ऐसा भी देखा कि जहाँ के लोग लड़की पैदा होते ही मार डालते हैं। पति के मरते ही स्त्री उसकी लाश के साथ जलकर मर जाती है। जिसे सती होना कहते हैं। मेरी समझ में भारत जिस प्रकार धन धान्य से भरपूर सर्वशिरोमणि देश है वैसेही उसमें बहुत से कुसंस्कार भी घुस गयेहैं। इस समय इस्लाम धर्म का प्रचार होना वहां बहुतही आवश्यक है। बिना इसके भारत उन्नति के शिखर पर कभी पहुँच नहीं सकता। यही कारण है कि सुल्तान महमूद ने हिन्दू मंदिरों को तोड़ा

और उनके धन संपत्ति को लूटा और हिन्दुओं को अच्छी तरह दंडित किया था, साथही अभी हिन्दुओं को और भी दंड देने की आवश्यकता है। इसे मैं मानता हूं कि भारत के समान दूसरा कोई मुल्क ईश्वर की सृष्टि में नहीं है किन्तु बाहर से वह देखने में जिस प्रकार सुन्दर और सारे वैभवों से परिपूर्ण है, उसी प्रकार उसके भीतर तीव्र विष भी भरा हुआ है, भारत की जातियाँ जितनी असभ्य और अंध विश्वास की भक्त हैं उतनी ही वह कट्टर भी हैं। उनमें बल वीरता, और साहस मानों कूट २ कर भरा है। इस कारण यह बात मेरे दिल में अच्छी तरह वैठ गयी है कि उस जाति को वश में कर लेना कोई सहज काम नहीं है। यद्यपि हिन्दूसमाज अनेक प्रकार के धर्म तथा आपस के मत भेद होने के कारण क्षति ग्रस्त हो रहा हैतथापि युद्ध के मैदान में वे सदा अपने प्राणों को हथेली पर लिये तैय्यार रहते हैं। वहाँ की प्रजा राजा को प्राणों से भी अधिक चाहती है। उसके पसीने की जगह अपना रक्त बहाना कर्तव्य समझती है। जाति भेद होने पर भी समय पर सब एक हो जाते हैं। अतः मेरी राय में बिना समझे बूझे भारतवर्ष पर चढ़ाई कर बैठना मानो अपने को विपद्ग्रस्त बनाना है।

मैं कोई योद्धा नहीं हूँ, तौ भी कह सकता हूँ, कि हिन्दुओंकी युद्धशक्ति, सामरिकबल किसी प्रकार भी कम नहीं है। जिस समय वे सिंहनाद करते हुए झुण्ड के झुण्ड अरिगण पर टूट पड़ते हैं, उस समय उन्हें जीत लेना बड़ाही दुष्कर हो जाता

है। उमड़ती हुई नदी के प्रबल वेग की भाँति उनके वेग में शत्रु सेना एक बारगी ही बहकर नाश हो जाती है। फिर बाणविद्या में भी हिन्दू लोग बड़े ही निपुण हैं। बाण चलाने में वे अपनी जोड़ी नहीं रखते। तलवार की कला तो मानों खास उनके ही जिम्मे पड़ी है!

इतना कहकर वह दूत चुप हो गया। कुछ देर तक वहाँ सन्नाटा छाया रहा। अन्त में कुतुबुद्दीन ने फिर कहा—"ठीक है, किन्तु वीर ही ऐसी अलभ्य वस्तु का उपभोग कर सकता है दूसरा नहीं। उद्योग से क्या नहीं होता? इसलिये उद्योग को कभी हाथ से न जाने देना चाहिए। उद्योगी के आगे ईश्वर भी हार जाते हैं। हम पुरुष होकर यदि इस कामधेनु समान धन रत्नों से भरपूर भारत का उपभोग न कर सके तो हमारा पुरुष जन्म वृथा है। हिन्दू-समाज में जितनी वीरता है उतनी ही फूट ने भी अपना अड्डा जमाया है। इसलिये उन बातों पर वृथा सोच विचार करना भीरुपन है। जरा सोचिये तो सही कि बीस वर्ष की अवस्था वाले बालक कासिम ने हिन्दुओं को परास्त किया था। भला बताइये, उस समय हिन्दुओं की वह बलवीरता शूरता कहाँ चली गयी थी? महमूद के अठारह बार आक्रमण करते समय क्या उनका वीरत्व सोया हुआ था? नहीं, बात यह है कि आपस की फूट और द्वेष के कारण हिन्दू जाति दुर्बल हो गयी है, फिर कुसंस्कार और गँवारपन ने तो और भी उन्हें चौपट कर डाला है। जिस

समय कासिम ने देवलपुरी पर चढ़ाई की उस समय हिन्दुओं को यह विश्वास था कि जब तक मंदिर में ध्वजा लगी है तब तक हिन्दू लोग कभी हार नहीं सकते। कासिम ने चुपचाप चतुराई से ध्वजा काट कर गिरवा दी। बस हिन्दू समझ गये कि अब अवश्य उनकी हार होगी, और बिना उद्योग ही वे हार खा गये।

इतना ही क्यों आलोर प्रान्त के सिन्धुदेशाधिपति महाराज दाहिर भी कासिम से पराजित हुए थे। लाहोराधिपति जयपाल के पुत्र अनंगपाल को भी उससे हारखानी पड़ी थी। जब हिन्दु अजेय हैं तो इन सब से वे हारे क्यों? अस्तु मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि वीरता के साथ भारत पर आक्रमण किया जाये तो विजय लक्ष्मी अवश्य प्राप्त होगी और बेखटके वहाँ मुसल्मानी अमल्दारी स्थापित हो जायगी।

मुहम्मद गोरी ने उसी समय अपने अन्य सरदारों से सलाह कर निश्चय कर लिया कि इस्लाम धर्म के प्रचारार्थ भारत पर चढ़ाई करना नितान्त आवश्यक है। यदि हम लोग साहस और कूटनीति का पालन करेंगे तो मनोरथ निश्चय सफल होगा।

—***—

पाँचवाँ प्रकरण।

साण्डा विजय।

मालूम होता है ईश्वर की यह इच्छा थी कि भारत पर यवनों का राज्य स्थापित हो। पहले ही से इस देश पर विदेशियों की लुब्धदृष्टि पड़ी थी। इतिहास जानने वालों से यह बात छिपी नहीं है कि गोरी के पहिले भी कई बार यवनों ने भारत को हस्तगत करने की चेष्टा की थी। अतः मुहम्मद गोरी के भार पर आक्रमण करने का कारण मीर और चित्ररेखा को पृथ्वीराज द्वारा आश्रय देना समझा जाय, या जो कुछ हो किन्तु यथार्थ में भारत के वैभव-ऐश्वर्य आदि पर लगी हुई बहुत दिनों की लुब्धदृष्टि ही इसका मुख्य कारण हो सकता है। और नहीं। अस्तु, कुतुबुद्दीन द्वारा भारत की प्रशंसा सुन और उसकी उत्तेजना से क्षुब्ध हो, गोरी की भारत—विजय आकांक्षा प्रबल रूप से जागृत हो उठी। अतः जैसा कि हम गत परिच्छेद में वर्णन कर आये हैं, अपने सामन्तों से सम्मति लेकर, शहाबुद्दीन दूसरे ही दिन बड़े २ वीर सरदारों और चुने हुए सैनिकों के साथ भारत की ओर चल पड़ा। उसने जाते ही पहले भारत के उत्तरीय देशों पर आक्रमण करना आरम्भ किया। सन् ११७५ ई० में मुल्तान पर उसने अधिकार जमाया। फिर सन् ११७८ ई० में अनहलवाड़ा को विजय कर ११८२ तक प्रायः समस्त सिन्धु देश को अपने

अधिकार में कर लिया। पश्चात् सन् ११८४ ई० में शहाबुद्दीन गोरी-लाहौर और सियालकोट पर भी अपना सिक्का जमाकर आगे बढ़ चला। वह और उसकी सेना बड़ी उमंगों के साथ अग्रसर होने लगी। कुतुबुद्दीन जैसा योग्य सलाहकार मंत्री पाकर वह और भी उत्साहित हो गया था। अब बस इसके बाद की घटना हमारे इस परिच्छेद से विशेष संबंध रखती है।

पृथ्वीराज के गुप्तचर लोग चारों तरफ टोह लगाते फिरते थे कि कहीं कोई नयी घटना तो नहीं हो गयी है। अतः उन्होंने मुहम्मद गोरी के भारत पर आक्रमण का समाचार पृथ्वीराज को सुनाकर कहा कि अब वह सिन्धुदेश लाहौर आदि विजय करता हुआ सैन्यदल को साथ ले आगे बढ़ता चला आ रहा है। उसके साथ बड़े२ वीर सरदार हैं।" इतना दूतों के मुंह से सुनते ही पृथ्वीराज ने अपने वीर २ सामन्तों, कन्ह, कैमास, मन्द और पुंडिर आदि को बुलाकर इस विषय में परामर्श किया। सर्वसम्मति से यही निश्चय हुआ कि पहलेही से आगे चलकर गोरी को रोका जाये, जिसमें कि वह आगे पैर बढ़ाने न पावे। सब वीर सैनिकगण रणसज्जा से सजकर तय्यार हो गये। अतः उसी समय पृथ्वीराज अपने सब सेना सामन्तों के साथ सारूण्डा नामक स्थान की ओर चल पड़े।

मीर हुसेन को इस समाचार से बड़ा ही दुःख हुआ, कि उसी के कारण मुहम्मद गोरी इस देश पर चढ़ आया है। इन सब फसादों की जड़ वही है। अतः वह उसी समय अपनीएक

हजार सेना को साथ लेकर पृथ्वीराज की सहायता के लिये चल पड़ा। रास्ते में पृथ्वीराज से भी हुसेन की भेंट हो गई। उसने कहा—"महाराज! साहब! आज मेरे ही कारण आप पर यह विपत्ति आयी है। आपने मुझ आश्रयहीन दीन को आश्रय देकर मेरी रक्षा की। अपने उदार वीर स्वभाव के वशीभूत होकर एक विधर्मी-शत्रु के पक्षवाले की रक्षा की और व्यर्थ झगड़ा मोल लिया। अतः मैं भी अपने कर्तव्य का पालन करूँगा। अपने आश्रयदाता के लिये यह प्राण भी देना पड़े तो भी मैं सहर्ष तय्यार हूं।'

मीर हुसेन की बातों से पृथ्वीराज का हृदय कमल आनन्द से खिल उठा। अतः दोनों ओर की सेना एक साथ सम्मिलित होकर आगे बढ़ती हुई शीघ्रही सारुण्डा नामक स्थान पर जा पहुँची और पड़ाव डाल कर शत्रु के आने की प्रतीक्षा करने लगी।

उधर शहाबुद्दीन को भी अपने दूतों द्वारा यह समाचार ज्ञात हो गया। वह इसके लिये बड़ाही उतावला हो रहा था कि किसी प्रकार पृथ्वीराज को परास्त कर पददलित कर डालें। अतः वह भी दुगुण उत्साह से आगे बढ़ता हुआ शीघ्र सारुण्डा आ पहुँचा। उसी समय दूतों ने पृथ्वीराज के मंत्री कैमास को यह समाचार आकर सुनाया। उस समय सवेरा हो रहा था। रात व्यतीत हो चुकी थी, कैमास ने उसी समय पृथ्वीराज को सूचित कर दिया कि शत्रु लोग शिर पर आ गये

हैं। समाचार पाते ही पृथ्वीराज की सेना उसी समय सजकर "जय हरहर!" शब्द करती हुई प्रबल वेग से आगे बढ़ चली। पृथ्वीराज की सेना में बड़े २ चुने हुए वीर थे। सभी एक से एक रण दक्ष और युद्ध कौशल से पूर्ण परिचित थे।

शत्रु सेना अग्रसर होती चली आ रही है, सुनते ही गोरी की सेना पाँच भागों में बटकर पृथ्वीराज की सेना पर टूट पड़ी। पृथ्वीराज की आज्ञा से यादवराय, महनसी, बहराम गूजर आदि बड़ेश्वीर सरदार मीर हुसेन की सहायता को तय्यार हो गये। पृथ्वीराज ने पहले ही अपने सामन्तों से कह दिया था कि मीर हुसेन की रक्षा करना ही हमारा मुख्य कर्त्तव्य है। अस्तु सब के सब जी जान से मरने मारने को तैयार हो गये।

पृथ्वीराज की सेना आगे बढ़ रही है, सुनतेही गोरी ने अपनी सेना को पाँच भागों में बांट कर पाँच दिशाओं से उन-पर आक्रमण करने की आज्ञा दे दी। सब से पहले ही गोरी के सेनापति तातार खां से मीर हुसेन की मुठभेड़ हो गई। मीर हुसेन के पास केवल एक हजार और तातार खां के पास सात हजार सवार थे। दोनों में भयंकर युद्ध हुआ दोनों ओर की सेना जी तोड़कर लड़ी। अन्त में तातार खां के सैन्यों के पैर उखड़ गये। अपने पांच हजार शूर वीरों के साथ तातार खां परलोक सिधारा। इधर तीन सौ मुसलमान और दो सौ हिन्दुओं के साथ मीर हुसेन भी मारा गया। तातार खां के

हार खाते ही झट खुरासान खाँ आगे बढ़ आया। इसकी वीर चामुण्डाराय से भिडन्त हो गई अन्त में बहुत सी सेनाओं के साथ खुरासान भी चामुण्डाराय के हाथों यमपुरी सिधारा। उसकी बची हुई सेना भागकर गोरी की सेना से जा मिली। अब क्या था—दो २ यवनसेनापतियों के आहत होते ही पृथ्वीराज की सेना ने बड़े ही प्रवल वेग से मुसल्मानी सेना पर आक्रमण किया। अन्त में मुसलमानों के छक्के छूट गये, वे प्राण भय से जिधर रास्ता मिला उधर ही भाग निकले। पृथ्वीराज की विजयी सेना उन्हें खदेड़ती हुई आगे बढ़ने लगी। शहाबुद्दीन ने बहुतेरा चाहा कि अपनी भागती हुई सेना को लौटा लें और उन्हें फिर से युद्ध करने को ललकारें किन्तु उसका यह प्रयत्न व्यर्थ हुआ। तुरन्त ही पृथ्वीराज के सिपाहियों ने मुहम्मद गोरी को घेर लिया। कुछ देर तक वह भी लड़ता रहा किन्तु अन्त को पकड़ कर पृथ्वीराज के खेमें में लाया गया।

रासो के कथनानुसार यह युद्ध बड़ाही भयंकर हुआ था। इसमें मुहम्मदगोरी के बीस हजार सैनिक तथा कितने ही सरदार मारे गये। पृथ्वीराज की ओर के तेरह सौ सिपाही और पाँच सरदार काम आये। अधिक क्षति मुसलमानों ही की हुई। पृथ्वीराज ने मुहम्मद गोरी को अपने यहाँ पाँच दिन तक कैद रखा। वंदी अवस्था में उसको किसी प्रकार का भी कष्ट होने न दिया। चार दिन तक सम्मान पूर्वक रखकर पांचवें

दिन भारत पर पुनः आक्रमण न करने की प्रतिज्ञा कराकर मीरहुसेन के पुत्र के हाथ उसे सौंप दिया।

विचारी चित्र रेखा जिसके कारण इतना भारी रक्तपात मचा था मीर हुसेन का मृत्यु संवाद सुनते ही छिन्नलता की तरह अचेत हो भूमि पर गिर पड़ी और अपने प्राणाधार प्रेम की देह के साथ जीवित ही कब्र में गड़कर समाधिस्थ हो गई। धन्य है! चित्ररेखा! वेश्यापुत्री होने पर भी तेरा प्रेम आदर्श है। बस इस प्रकार सारुण्डा का युद्ध समाप्त हुआ, और मुहम्मदगोरी को अपमानित लाञ्छित तथा पराजित होकर लौटना पड़ा। जिसको वह पददलित करना चाहता था उसीसे उसे उलटे पददलित होना पड़ा।

छठवाँ प्रकरण।

'आबू का युद्ध'

इच्छन कुमारी।

आबू राजपूताने का एक प्रसिद्ध पहाड़ी स्थान है। आबू का किला बहुत ही सुदृढ़ बना हुआ है। उस समय उसी आबू की राजधानी चन्द्रावती नाम की नगरी में सलख नाम का राजा राज्य करता था। इस राजा की एक बड़ी ही रूपवती कन्या इच्छन कुमारी नाम की थी। उस समय इच्छन कुमारी के रूप गुण की प्रशंसा चारों तरफ फैल रही थी। सभी राजे महाराजे उससे विहाह करने को लालायित हो रहे थे अस्तु, एक दिन गुजरात का राजा भोलाराय भीमदेव ने अपनी स्त्री की सहेलियों से इच्छनकुमारी के रूप गुण की प्रशंसा सुनी। उसी दिन से वह उस पर तनमन से अनुरक्त हो गया, उसके प्रेम में वह इतना उन्मत्त हो गया कि राज्य कार्य की देख रेख करना भी उसने छोड़ दिया।

राना भीमदेव भी कोई साधारण राजा न था। वह बड़ाही नीति कुशल राज्य शासन में चतुर था। उस समय के अच्छे२ राजा भी उसका लोहा मानते थे। गुजरात की प्रजा उसके राज्यशासन से सन्तुष्ट रहती थी। अस्तु उसने उसी समय एक पत्र राजा सलख को अपनी कन्या देने के लिये बड़े ही गर्वीले शब्दों में लिख भेजा। पत्र बड़ा ही अपमान जनक था।

पढ़ते ही राजा सलख क्रोध से कांप उठे। फिर भी राजा सलख ने बड़े ही नम्र शब्दों में उत्तर दिया कि इच्छन का विवाह पृथ्वीराज के साथ होना पहले ही से निश्चित हो चुका है। मैं इसके लिये बचनबद्ध हो चुका हूं। बचन भंग करना उचित नहीं। आशा है भीमदेव अब इस विषय में हठ न करेंगे। किन्तु इस पर पत्रवाहक ने भीमदेव का पक्ष लेकर कुछ वाद विवाद करना आरंभ किया। परिणाम यह हुआ कि धीरे २ बात बढ़ गयी, राजा सलख ने भी बहुत से अपमानपूर्ण शब्दों से पत्र बाहक को फटकारा। अन्त में भीमदेव का दूत खुले शब्दों में डरा धमका कर चला गया। तब राजा सलख ने दूत के चले जाने पर अपने पुत्र जैतसी से इस विषय में परामर्श किया। उसने भी यही सलाह दी कि जब पृथ्वीराज के साथ इच्छन कुमारी का विवाह पक्का हो गया है तो इसमें उलट फेर करने का कोई काम नहीं है। विवाह उन्हीं से होना चाहिये।

संसार का इतिहास देखने से पता लगता है कि जितने कलह, वाद-विवाद, आपस की लड़ाई, भाई २ में विरोध, भयंकर रक्तपात, आदि हुए हैं सबों की जड़ नारी ही मानी गई है। वास्तव में देखा जाय तो सारे अनर्थों की जड़ यही स्त्री जाति हैं। इनकी सुन्दरता, मोहिनी रूप पुरुषों के हृदय में, चाहे वह कितना ही वीर और कट्टर क्यों न हो, विला-सिता की आग धधका ही देता है। यही कारण है कि भारत

के क्षत्रियबीर और राजे महाराजों ने इनके रूप के दीपक में पतंग बन कर अपने मान सम्मान गौरव को नष्ट कर डाला है। यदि भारत के क्षत्रिय वीर विलासवासना से उत्तेजित न होकर स्त्री रूपी सुधा का रस पान करने में विशेष प्रलुब्ध न होते, व्यर्थ अहंकार के वशीभूत न होकर स्त्री के लिये रार कलह न मचाते तो आज भारत की दशा इतनी गिरी हुई कभी दीख न पड़ती।

भारतवर्ष की रक्षा पुरातनकाल से ही क्षत्रिय समाज करता आया है। जिस समय की बात यहाँ लिखी जा रही है, उस समय भी इसकी रक्षा, उद्धार आदिका भार क्षत्रिय जाति ही पर था। निस्सन्देह वह समय भारतके लिये बड़ा ही संकटापन्न था। विदेशियों का विधर्मी दल प्राणपण से इस पर ताक लगाये घूम रहा था। किन्तु इधर वे क्षत्रियसमाज में विलासप्रियता, फूट, कलह, आपसी द्वेष आदि विषाक्त कीड़े अपना अड्डा जमा रहे थे। अपनी वास्तविक स्थिति और कर्तव्य को भूल कर, एक तुच्छ नारी के लिये लड़ मरने को तय्यार हो रहे थे। पृथ्वीराज की जीवनी पढ़ने से भी पाठकों को पता लग जायगा कि ऐसे वीरश्रेष्ठ पृथ्वीराज में भी विलासवासना की तृष्णा घुसी हुई थी। स्त्रियों के लिये भारतीय वीरों ने क्या २ अनर्थ न कर डाला, कैसे २ भयंकर रक्तपात मचाये, किस तरह डाइन फूट को आश्रय दिया, यह सब इस परिच्छेद में भली भांति उल्लेख किया गया है।

हम पहले ही कह आये हैं कि शहाबुद्दीन गोरी को अपने यहां पांच दिन कैद रखने के बाद पुनः अपने क्षात्र धर्म के अनुसार उसे आदर पूर्वक फिर दुबारा भारत पर आक्रमण न करने की प्रतिज्ञा करवा कर छोड़ दिया, किन्तु दुष्ट कभी अपनी दुष्टता से बाज नहीं आता। शठ के संग शठता ही का व्यवहार करने से शठ पराजित होता है। अतः शहाबुद्दीन ईर्ष्या की आग को हृदय में सुलगा कर अपनी राजधानी में लौट आया। वह चोटहिल सिंह की भांति और भी रातदिन अपमान की आग से जलने लगा और वह पुनः पृथ्वीराज से बदला लेने का सुयोग ढूँढ़ने लगा। उसके जासूस लोग चारों तरफ भारतीय प्रदेशों में घूम २ पृथ्वीराज की गति विधि का पता लगाते फिरते थे। अतः एक दिन दूतों से उसने सुन लिया कि पृथ्वीराज लट्टू वन में शिकार खेलने गये हैं। बस फिर क्या था अपने दल बल के साथ वह पृथ्वीराज पर टूट पड़ा किन्तु उसके दुर्भाग्य के कारण वहां भी उसकी दाल न गली। पुनः खिसियानी बिल्ली की तरह उसे भाग जाना पड़ा। परंतु फिर भी वह चुप होकर बैठ न सका अपने सामरिक बल को बढ़ाता हुआ सुयोग की ताक में लगा रहा।

अब हम पुनः अपने प्रकृत विषय की ओर झुकते है। भीमदेव के दूत के चले जाते ही पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर जी के पास राजा सलख ने सब समाचार ब्यौरेवार लिख भेजा। यह भी लिख दिया था कि भीमदेव का दूत किस प्रकार

धमका कर चला गया है। अन्त में इस बात पर विशेष जोर देकर आग्रह प्रगट किया कि जहांतक हो विवाह शीघ्र होजाये तो अच्छा है। क्योंकि शुभ कार्य में विलम्ब करना अच्छा नहीं। अतः उसी समय यह समाचार पृथ्वीराज को दिल्ली में पहुँच गया। समाचार पाते ही वह अपनी सेना सामन्तों के साथ इच्छुन कुमारी को व्याहने के लिये चल पड़े। दूतों द्वारा भीमदेव को यह खबर लग गयी। सुनते ही वह पृथ्वीराज पर मारे क्रोध के जल भुन गया। उसने उसी समय इस आशय का एक पत्र भेजकर पृथ्वीराज को समझाने की चेष्टा की कि सलख मेरा शत्रु है, सावधान! तुम यदि उसका पक्ष लोगे तो अच्छा न होगा। पत्र भेजने के बाद ही उसने अपने आधीनस्थ जितने राजा लोग थे सबों को बुला लिया और शीघ्र ही सेना दलके साथ दक्षिण की ओर से आबू पर आक्रमण कर दिया। कारण उसने सोचा था कि पृथ्वीराज के आने के पहिले ही आबू पर अपना अधिकार जमालेंगे। सौभाग्य से उसकी चेष्टा सफल भी हो गई।

यद्यपि राजा सलख पहले ही से सचेत था तोभी वह भोलाराय को हटा न सका। आक्रमण रोकने को उसने अपने सामर्थ्य भर चेष्टा की किन्तु भीमदेव के प्रबल आक्रमण को वह रोक न सका। बहुत देर तक युद्ध करने के बाद अन्त को राजा सलख अपने सरदारों सहित वीरगति को प्राप्त हुआ और आबू पर भीमदेव की विजय पताका फहरा उठी।

इस प्रकार अपनी राज्य सत्ता जमाकर भोलाराय भीमदेव गुजरात लौट आया। शोक! इतना करने पर भी इच्छिन कुमारी उसके हाथ न लगी। वह क्रोध और डाह से मनही मन और भी दग्ध होने लगा। उस पर पृथ्वीराज की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई उन्नति और कीर्ति को देखकर वह और भी जल भुन रहा था। वह नित्य ईश्वर से यही मनाता था कि किसी तरह पृथ्वीराज की अवनति हो बल्कि जहाँ तक हो उनका अस्तित्व ही शीघ्र संसार से लुप्त हो जाय। अस्तु बहुत सोच विचार करने के बाद उसने यही युक्ति अच्छी समझी कि बस शहाबुद्दीन को पत्र लिखकर उसके विरुद्ध लड़ने के लिये आमंत्रित करें। क्योंकि शहाबुद्दीन गोरी के समान इस समय पृथ्वीराज का शत्रु और कोई नहीं है। बस उसने उसी समय एक पत्र शहाबुद्दीन के पास लिख भेजा। पत्र में यह लिखा था कि इस समय पृथ्वीराज दिल्ली में नहीं है। आप शीघ्र आकर दिल्ली को घेरिये, और मैं नागौर को जा घेरता हूं। आपकी सहायता होगी तो अवश्य हम लोग पृथ्वीराज को नीचा दिखा सकेंगे। मुझे धन सम्पत्ति कुछ नहीं चाहिये, एक मात्र इच्छिन कुमारी को हस्तगत करना ही मेरा प्रधान उद्देश्य है। पत्र, मकवान नामक एक उसका विश्वस्त अनुचर-शहाबुद्दीन के पास ले गया था। हा! जाति के शत्रु, देशद्रोही भीमदेव! यह तुमने क्या कर डाला? धिक्कार है तुम्हारी बुद्धि को! ईर्ष्या के वशीभूत होकर अपने देश भाई का

सर्वनाश करने के लिये, तुमने एक विदेशी शत्रु को आमंत्रित किया ! अस्तु,

मकवान भीमदेव का पत्र लेकर सीधे शहाबुद्दीन के पास जा पहुँचा। पत्र उसके सामने रखकर उसने भीमदेव की मंशा कह सुनायी। किन्तु पृथ्वीराज से हारखाने के कारण शहाबुद्दीन का मिजाज बहुत बिगड़ा हुआ था। न जाने उस समय उसके मनमें क्या आया कि वह उल्टे एक दम मकवान ही पर बिगड़ उठा और मनमानी गालियों से भीमदेव की भर्त्सना करने लगा। मारे क्रोध के उसने चिल्ला कर कहा—"दूर हो क़ाफिर ! मुझे किसी के सहायता की जरूरत नहीं। मैं अकेला ही पृथ्वीराज से बदला ले सकता हूं ! अच्छा अब मैं भीमदेव की ताकत की भी आजमाइश कर लूंगा कि वह कहाँ तक अपने को वीर लगाता है। इस पर मकवान ने भी भीमदेव की प्रशंसा के कुछ राग गाकर सुनाये। धीरे २ वादाविवाद होने लगा। अन्त में फल यह हुआ कि विचारा मकवान वहीं मुसलमानों के हाथ मारा गया। वहीं देशद्रोह का फल भोगना पड़ा।

लोभ मनुष्य को खा डालता है, यह बहुत सत्य है, आज उसी लोभने जाति के शत्रु, स्वदेश प्राणघाती भीमदेव को अपमान की ठोकर से पददलित कराया। जिस प्रलोभन में अंधा होकर उसने अधर्म पर मन दिया था, अपनी जिस दुराकांक्षा को पूर्ण करने के लिये उसने अन्याय पर कमर कसी थी, उसी

ने उसे थप्पड़ मार कर उसकी सारी आशाओं को मिट्टी में मिला दिया। साथही अपने एक प्रिय पात्र सरदार से भी उसे हाथ धोना पड़ा। इस प्रकार अपने पापों का प्रत्यक्ष प्रायश्चित भोगकर वह खिसियानी बिल्ली के समान हाथ मलने लगा। अतः कुछ सोच विचार करने के बाद उसने गजनी पर ही आक्रमण करके गोरी से बदला लेने का मन में स्थिर कर लिया। शीघ्रही युद्ध की सारी तय्यारियाँ करके ज्योंही वह प्रस्थान के लिये प्रस्तुत हुआ त्योंही अग्निदेव ने प्रबलकोप से विकराल रूप धारण कर किले को दग्ध करना आरंभ किया इस प्रकार एकाएक ऐसा अपशकुन होते देख वह भयसे कांप उठा और भाग्य को विपरीत जान चुपचाप दिल मसोस कर बैठ गया।

यह सब समाचार पृथ्वीराज के कानों में भी पहुँचने में देर न लगी। उन्होंने यह भी सुन लिया कि मुहम्मद गोरी पुनः शीघ्र ही भारत पर आक्रमण करना चाहता है। अतः वे उसी समय अपने सैन्य दलों को सजाने का प्रबंध करने लग गये। पृथ्वीराज सेना सजाने में बड़े ही चतुर थे। इस समय पृथ्वी- राज की सैन्य-संख्या केवल आठ हजार थी। इस कारण उन्होंने सेना संगठन बड़े ही अच्छे ढंग से किया था। कारण कि इस बार उन्हें दो दो शत्रुओं से मोर्चा लेने का अवसर आ गया था। फिर अपने नानाके पास पत्र भेजकर और भी चार हजार सेना उन्होंने मंगा ली। इस प्रकार अपने सैन्य दल को

बढ़ाकर वे युद्ध के लिये तय्यार हो गये और चुपचाप बारह हजार सैन्य के साथ सर्व सामानों से सुसज्जित होकर शत्रु के आने की प्रतीक्षा करने लगे।

शीघ्रही पृथ्वीराज को फिर समाचार मिला कि शहाबुद्दीन गोरी अपनी टिड्डीदल सेना के साथ साढएडा पर आधमका है। अतः पृथ्वीराज ने उसी समय अपने सामन्तों को बुलाकर परामर्श किया कि अब किस प्रकार इन दोनों शत्रुओं से निपटना चाहिये। चामुण्डाराय, जैतराव, देवराय बग्गरी आदि वीर सामन्तों ने अपनी २ युद्ध संबंधी सम्मति बड़ी ही योग्यता के साथ प्रकट की। इसी समय लोहाना अजानुबाहु भी अपनी पांच हजार सेना के साथ पृथ्वीराज की सहायता को वहां आ पहुंच गया। अब क्या था पृथ्वीराज का सैन्यबल और भी बढ़ गया। इस तरह उनकी सेना सब मिलाकर सत्रह हजार हो गयी।

अब पृथ्वीराज ने अपनी सेना को दो भागों में विभक्त कर दिया। इसके बाद एक भाग का सेनापति चामुण्डाराय तथा कैमास को नियुक्त किया और दूसरे भाग का सेनापतित्व पृथ्वीराज ने स्वयं अपने हाथ में रखा। इस प्रकार दोनों शत्रुओं का पथ रोक करके सम्पूर्ण सेना सजकर तय्यार हो गई। कैमास भोलाराय भीमदेव का सामना करने के लिये नागौर में रह गया। और शहाबुद्दीन गोरी से युद्ध करने के लिये पृथ्वीराज अपनी सेना लेकर साढएडा की ओर चल पड़े।

हा ! भारत का भविष्य उस समय बड़ा ही अंधकार मय हो रहा था। वह समय उसके लिये बड़ाही भयंकर था। उधर तो विदेशी शत्रुओं का दल इसका सर्वस्व हड़प जाने की ताक में बैठा रहता था और इधर भारत के रक्षक ही भक्षक बन रहे थे। जिन पर इसकी रक्षा का भार निर्भर था वही क्षत्रिय वीर आपसी फूट, कलह ईर्ष्या आदिकों के वशीभूत होकर एक भाई को निगल जाने की चेष्टा में लगे रहते थे। अपनी विलास वासना की-तृप्ति ही को वे लोग अपना कर्तव्य समझ रहे थे। चाहे इसके लिये हजारों मर जायें, लाखों देश भाइयों का रक्त बह जाय, कोई परवाह नहीं। किन्तु अपनी विलास वासना को चरितार्थ करना ही उनका एक मात्र कर्तव्य था। अस्तु, भोला राय भीमदेव के सरदारों ने बहुत तरह से उसे समझाया कि पृथ्वीराज से लड़ाई करना ठीक नहीं, उनसे संधि कर लेने ही में भलाई है और सलखसे भी युद्ध करना व्यर्थ है। किन्तु उस समय उसने उन लोगों की सलाह पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और अपनी सेना को युद्ध की आज्ञा दे दी। विनाश काले विपरीत बुद्धि ! इसी को कहते हैं।

रासो का कथन है कि भीमदेव का एक अमरसिंह नामक जैनी मंत्री बड़ा ही चतुर था। वह पूरा तांत्रिक–मायावी था। शायद यही कारण है कि उसने भीमदेव को अपनी मुट्ठी में कर रखा था, साथ ही साथ इस बार के युद्ध में उसने कैमास को भी अपने वश में लाना चाहा था। खैर मन्त्रप्रयोग आदि का

परिणाम क्या हुआ सो तो ईश्वर ही जाने, या तो कवि चन्द ही जान सकते हैं। परन्तु हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि अमरसिंह की चतुराई उस समय काम कर गयी। बात यह हुई कि कोई एक काले नामक खत्री की एक बड़ी ही रुपवती कन्या थी। उसने झट उसी को कैमास के पास भेज दिया। वह पहले ही से तैयार थी। उसने अपने रूप के जाल में कैमास को अच्छी तरह फँसा लिया। इतने वीर स्वामी भक्त होने पर भी कैमास उस कन्या पर इतना मुग्ध हुआ कि उसे अपने कर्तव्य का कुछ भी ज्ञान न रहा। अन्त में फल यह हुआ कि नागोर पर भीमदेव का अधिकार हो गया।

यह समाचार शीघ्र दिल्ली जा पहुंचा। वहां से कन्ह, चामुण्डराय, चन्द पुण्डिर प्रभृति वीर सरदार इसकी जांच के लिये नागौर चले आये। वहां की अवस्था देखकर उन लोगों को बड़ा ही दुःख हुआ और उन्होंने बहुत तरह से कर कैमास को मीठी २ बातों से धिक्कारा तब उसे ज्ञान हुआ, उसकी मोह-निद्रा टूटी। उस समय उसे बड़ाही पश्चात्ताप हुआ कि हाय! यह मैंने क्या काम किया? अस्तु, उसने उसी समय अपनी तथा इन सरदारों के साथ आयी हुई सेना लेकर बड़े वेग से भीमदेव की सेना पर चढ़ाई कर दी। बड़ी भयंकर मार काट मची। इस बार कैमास ने वह वीरता दिखायी कि शत्रु दल के छक्के छूट गये, उसकी उत्तेजित सेना ने इस बार दुगुने उत्साह से शत्रुदल का मर्दन किया, परिणाम

यह हुआ कि शीघ्रहो भीमदेव की सेना पराजित होकर भाग खड़ी हुई। और आबू पर पृथ्वीराज की राज्य सत्ता स्थापित हो गयी। वहाँ का सरदार जैतसी प्रधान बनाया गया। रासो के मतानुसार यह लड़ाई विक्रम संवत् ११४४ की अष्टमी को आधी रात के समय हुई। इस युद्ध में दोनों ओर के मिलाकर १६००० सेना मारी गयी। १३००० भीमदेव की और ३००० कैमास की।

साँतवाँ प्रकरण।

गोरी से पुनः पृथ्वीराज की मुठभेड़।

—:०—०:—

ठीक उसी समय जिस समय कि वीरवर कैमास से भीमदेव की सेना लड़ रही थी, शहाबुद्दीन गोरी भी अपनी अगणित सेना के साथ बड़े वेग से बढ़ता चला आ रहा था। यह समाचार पृथ्वीराज को पहले ही से मालूम था, कारण कि उन्होंने अपना एक दूत पहलेही से भेद लाने के लिये नियुक्त कर रखा था। उस दूत ने अच्छी तरह पता लगाकर पृथ्वीराज को खबर दी कि इसबार शहाबुद्दीन तीन लाख सेना लेकर आ रहा है। उसके पास गक्खर, काबुली, काश्मीरी, हबशी, आदि बहुत सी जाति की सेना हैं।

इस बार के युद्ध में बड़ी ही भयङ्कर मार काट मची थी। कारण कि शहाबुद्दीन अबकी बड़े भारी अगणित सैन्यदल के साथ भारत पर चढ़ आया था। किन्तु बिचारे पृथ्वीराज के पास उतनी सेना न थी। यद्यपि गोरी के टिड्डीदल की भांति तीन लाख सेना के प्रवाह को रोकना कोई सहज काम न था, तथापि केवल पन्द्रह हजार सेना लेकर तीनलाख यवन सेना का पृथ्वीराज ने बड़ी ही वीरता तथा कौशल के साथ सामना किया था। यह भी उनके ही समान बहादुर का काम

था। अस्तु यह युद्ध भी सारुण्डा के पास ही हुआ था। शहाबुद्दीन यह सुनकर कि पृथ्वीराज के पास बहुत थोड़ी सेना है, मारे आनन्द के नाच उठा। उसे विश्वास हुआ कि इस बार अवश्य विजयलक्ष्मी उसके गले जयमाल पहिनायेगी। अतः उसने उसी समय अपनी खुरासानी सेना को आक्रमण करने की आज्ञा दे दी। इस आक्रमण को रोकने के लिये पहले लोहाना अजानुबाहु आगे बढ़ा। लोहाना की अद्भुत वीरता से खुरासानी सेना के छक्के छूट गये। जैतसी सेना के झंडों की रक्षा पर नियुक्त था। जो हो इस इनी गिनी थोड़ी सी सेनाने ही वह अद्भुत काम कर दिखाया कि शत्रु के एक दम दांत खट्टे हो गये। उसी समय कन्ह चौहान भी आ पहुँचा। आते ही उसने रणक्षेत्र में मानो प्राण डाल दिये। एकही हाथ में वह चार पांच आदमियों को भुट्टे की तरह काट गिराता था। उसकी अद्भुत वीरता देखकर मुसल्मान सैनिक हतोत्साह हो गये। बड़ा भीषण युद्ध हुआ पृथ्वीराज की क्रुद्ध गरजती हुई सेना यवनदल को छिन्न भिन्न करती हुई शहाबुद्दीन की ओर बढ़ने लगी। वह भूखे व्याघ्र की भांति गोरी को ढूंढ़ रही थी। शहाबुद्दीन ने जब यह हाल देखा तो वह घबड़ा गया और झट घोड़े पर से उतर कर हाथी पर सवार हो गया। साथही और सब यवन वीरगण उसको अपने घेरे में लेकर चारों तरफ से उसकी रक्षा करने लगे।

उधर पृथ्वीराज की राजपूत सेना जीवन की आशा त्याग कर रण मद में उन्मत्त हो भयंकर युद्ध कर रही थी। कन्ह

कैमास आदि वीरों की तलवार जिधर उठती थी उधर ही असंख्य यवनों का रुण्ड मुण्ड धरती पर लोटने लगता था। अतः ज्यों ही मुहम्मद गोरी को हाथी पर सवार होते देखा, त्यों ही वीरवर जैतसी प्रमादप्रचण्डवेग से उसकी ओर झपट पड़ा। वह यवनसेना को चीरता हुआ भीतर घुसपड़ा और उसकी न रुकनेवाली तलवार एक २ को गिन २ कर मृत्यु के घाट का पानी पिलाने लगी। युद्ध करते २ थोड़ी ही देर में वह एक ऐसे स्थान पर जा पहुंचा कि जहां से निकलना उसके लिये असंभव था। वह बेतरह यवन सैनिकों से घिर गया था। संयोग से पृथ्वीराज की दृष्टि उसपर जा पड़ी। उन्होंने देखा कि उसकी अवस्था बड़ी ही शोचनीय हो रही है। बस पृथ्वीराज स्वयं उसके पास घोड़ा दौड़ाकर शत्रुओं को विदारते हुए उसके पास पहुँच गये, और उस काल के गाल में पड़े हुए वीर जैतसी को शीघ्र बाहर निकाल लाये। बाहर आते ही जैतसी पुनः भयंकर काल रूप धारण कर लिया, इसबार उसकी असाधारण वीरता से शत्रु सेना में हाहाकार मचगया और यवन सेना पीठ दिखाने को बाध्य हुई।

रंग कुरंग देख कर शहाबुद्दीन पुनः हाथी पर से उतर कर घोड़े पर आरूढ़ हुआ और सेना को जोशीले शब्दों में ललकार कर उसको रोक लेना चाहा। किन्तु इससे कोई भी फल न हुआ। सेना एक दम पीठ दिखाकर युद्ध स्थल से भाग निकली, लाचार शहाबुद्दीन को भी उनका अनुसरण करना पड़ा। शहा-

बुद्दीन को इस प्रकार भागते देख कर जैतसी ने बड़ी वीरता से जाकर उसे पकड़ लिया। कहा जाता है सम्वत् ११३६ ई० माघ सुदी ६ को शहाबुद्दीन पुनः बंदी बना कर अजमेर लाया गया। इस प्रकार इस बार भी उसे हार खाकर पृथ्वीराजद्वारा पददलित होना पड़ा।

अन्त में युद्ध से निश्चिन्त होकर सम्वत् ११३६ई० चैत्रवदी नौमी को पृथ्वीराज ने इच्छनकुमारी से विवाह कर लिया। एक तो विवाहोत्सव, दूसरे युद्ध में जय प्राप्ति, बड़ी ही धूम धाम से विवाहोत्सव सम्पन्न हुआ। साथ ही इस आनन्द के उपलक्ष्य में कुछ द्रव्य रत्नादि लेकर मुहम्मदगोरी भी छोड़ दिया गया।

इसके बाद पुनः पृथ्वीराज निश्चिन्त हो आनन्द पूर्वक राज्य शासन में दत्तचित होगये। एक वर्ष तक इच्छनकुमारी के साथ पृथ्वीराज आनन्द विहार करते रहे। किन्तु उनकी विलासवासना उत्तरोत्तर बढ़ती जाने लगी जिस प्रकार उन्हें सुंदर स्त्रियां एक के बाद दूसरी मिलती जाती थीं उसीप्रकार उनकी अभिलाषा भी दिन पर दिन अधिक बढ़ती जाती थी। एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी, इसी तरह नई २ युवती के साथ प्रेम विहार की आकांक्षा उनके हृदय पर प्रबल होती जाने लगी। एक वर्ष पूरा होते ही उनकी तबीयत इच्छन कुमारी से भर गयी। दूसरी नई की ओर उनका हृदय झुक गया। उसी समय उन्होंने सुना कि चन्द पुण्डिर की एक बड़ी

ही रूपवती कन्या है। बस फिर क्या था अब उसी के लिये वे लालायित होने लगे। अन्त में चन्द पुण्डिर से इसकी चर्चा की गई। सौभाग्य से उसने यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया। अन्यथा उसके लिये भी चार पांच हजार मनुष्यों की प्राणाहुति होजाना कोई बड़ी बात न थी।

विषयी कामी पुरुष की इच्छा कभी पूरी नहीं होती। जितनी उसकी रूप की आकांक्षा पूर्ण होती है उतना ही उसकी विषय वासना भी प्रबल होती जाती है। उसको कभी स्त्रीके विवाहसे तृप्ति नहीं होती। देखिये अभी चन्द पुण्डिर की कन्यासे विवाह हुए थोड़े ही दिन भी होने नहीं पाये थे कि उनका मन पुनः दूसरी ओर झुक पड़ा। एक दिन सहसा उनकी काम दृष्टि कैमास की बहिन पर जा पड़ी। उसी समय यह प्रस्ताव उससे किया गया। उस विचारे ने भी विना किसी आपत्ति के यह सम्बन्ध स्थापित करना स्वीकार कर लिया। बस पाठक समझ लें कि पृथ्वीराज का कामेच्छा कितनी अधिक वढ़ी चढ़ी थी।

केवल पृथ्वीराज ही को नहीं, उस समय समस्त क्षत्रिय समाज की यही व्यवस्था हो रही थी। वे सब आपस की फूट कलह, द्वेष, हिंसा के वशीभूत होकर एक दूसरे से लड़ मरने को तय्यार हो रहे थे। उस समय भाई, भाई के रक्त से अपनी प्यास बुझाना चाहता था। शोक! चौहान और सोलंकी में पहले ही से वैर चला आता था। इधर फिर सोलंकी

और मालवाधिपति भी आपस में खींचातानी कर रहे थे। इस प्रकार फूट की आग भारत के प्रत्येक घर में बराबर सुलगती जा रही थी। अस्तु यदि पाठकगण भारतवर्ष के इतिहास पर ज़रा भी विचार की दृष्टि डालेंगे तो उन्हें स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि स्त्रियों के कारण ही इन सब द्वेष हिंसा आदि भयंकर कीड़ों की उत्पत्ति हुई है। यदि उस समय के वीर नृपतिगण अपनी कामवासना के वशीभूत न होते, विलास धारा में प्रवाहित होकर स्त्रियों पर अधिक अनुरक्त न होते तो भीमदेव और राजा सलख के युद्ध में व्यर्थ अपनी जाति के हजारों भाइयों के रक्त से भारत भूमि कभी न सींची जाती। पर शोक! यह भारत का ही दुर्भाग्य है कि जिनके ऊपर भारत की रक्षा का भार अवलंबित था वही उसका सर्वनाश करने को उतारू होरहे थे।

अठवाँ परिच्छेद

पृथ्वीराज को दिल्ली की गद्दी की प्राप्ति

पाठकों को स्मरण होगा कि जिस समय अजमेर में चौहानवंशभूषण पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर जी का डंका बज रहा था, उस समय दिल्ली के शासन का वागडोर तोमर वंशाधिपति महाराज अनंगपाल के हाथ में था। दिल्ली में अनंगपाल नाम के दो राजा होगये। आरम्भ में प्रथम अनंगपाल द्वारा ही सन् ७३६ ई० में दिल्ली में तोमरवंश की धाक जमी। फिर बीच में कई राजे होगये जिनका कोई यथार्थ विवरण नहीं मिलता। इसके बाद बीस राजाओं ने दिल्ली में शासन किया। यह भी किसी २ इतिहासवेत्ताओं का कथन है कि हमारे पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर जी चौहान के ससुर ही अन्तिम अनंगपाल थे। आरम्भ से लेकर इनके समय तक दिल्ली में बहुत कुछ उलट फेर होता आया था। जिस समय पृथ्वीराज के नाना अनंगपाल के हाथ में दिल्ली के शासन की बागडोर पड़ी उस समय उसकी अवस्था उतनी उन्नत न थी। किन्तु उनके हाथ में पड़ते ही पुनः दिल्ली नया कलेवर धारण कर नयी प्रतिभा से चमक उठी। प्रथम अनंग-पाल के शासन काल की कोई विशेष घटना का पता नहीं लगता। भूल से रासो में इन्हीं दूसरे अनंगपाल को ही दिल्ली

बसाने वाले के नाम से उल्लेख किया गया है, वास्तव में विचार करने से साफ ज्ञात होता है दिल्ली को बसाने वाले वही प्रथम अनंगपाल ही थे—

इन्हीं अन्तिम अनंगपाल की दो कन्यायें थी। एक सोमेश्वर जी से और दूसरी कन्नौज के राजा जयचंद के पिता से व्याही गयी थी। कुछ ऐतिहासिकों का मत है कि लगभग सन् ११५१ ई० में अजमेर के चौहान वंश के राजा बीसलदेव ने तोमरवंश को नष्ट भ्रष्ट किया था। किन्तु पराजित राजा अनंगपाल की कनिष्ठा कन्या से वीसलदेव के पुत्र सोमेश्वर जी का व्याह हो जाने के कारण दोनों घरानों में फिर से मित्रता स्थापित हो गयी। बस अब, उसके बाद की घटनायें, हमारी इस पुस्तक से सम्बन्ध रखती हैं। उस समय अनंगपाल और सोमेश्वरजी में बड़ा घनिष्ट प्रेम भाव था। दोनों एकता के सूत्र में पूरी तरह से बंध गये थे। पृथ्वीराज को अनंगपाल बहुत चाहते थे। इसी कारण पृथ्वीराज कभी दिल्ली में रहते और कभी अजमेर में। बाल्यकाल से ही इनके गुणों पर राजा अनंगपाल हृदय से मोहित हो रहे थे। उन्हें विश्वास हो गया था कि भविष्य में लड़का बहुत ही होनहार होगा। यह अवश्य एक दिन अपना नाम संसार में अमर कर जायेगा। इसी कारण उन्होंने अपने मन में निश्चय कर लिया कि अपना उत्तराधिकारी पृथ्वी-राज को ही बनाऊंगा। अतः धीरे २ अनंगपाल वृद्धावस्था को प्राप्त होगये और एक प्रकार उन्हें संसार से विरक्ति हो गयी।

तब उन्होंने विचारा कि अब जीवन के शेष भाग को ईश्वर की आराधना में बिताना चाहिए। अतःइसके लिये बद्रिकाश्रम में जाकर तप साधना करना निश्चय करके उन्होंने उसी समय पत्र द्वारा इसकी सूचना देकर पृथ्वीराज को शीघ्र अपने पास बुला भेजा। उस समय पृथ्वीराज अपनी राजधानी अजमेर में थे। दूत पत्र लेकर अजमेर चला गया। पत्र पढ़कर सोमेश्वर जी और पृथ्वीराज बड़े प्रसन्न हुए। इस तरह एकाएक अनायास ही दिल्ली की गद्दी प्राप्त हो रही है यह क्या कम सौभाग्य की बात है? किन्तु साथही इस राज्य प्राप्ति में एक और बखेड़ा खड़ा होने की विशेष आशंका थी। इसलिये इस विषय में विशेषरूप से विचार करने की आवश्यकता आ पड़ी। अतः पृथ्वीराज ने उसी समय अपने समस्त वीर सरदार सामन्तों को एकत्र कर एक महती सभा की आयोजना की। सभा में राजा अनङ्गपाल का पत्र उपस्थित किया गया और उसे पढ़ लेने के बाद उसपर विचार होने लगा कि इस विषय में क्या करना चाहिये। सबसे प्रथम अधिक विचार करने योग्य बात तो यह थी कि उनके बाद उनके राज्य का हक़दार उनका बड़ा नाती कन्नौज का राजा जयचन्द था। उसके होते हुए आनंगपाल छोटे पृथ्वीराज को राज्याधिकार देकर अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहते हैं। अतः ऐसा हो जाने से भविष्य में आपस में एक भयंकर विग्रह की आग भड़क उठने की अधिक संभावना दीख पड़ती थी। यदि वास्तव में विचार

की दृष्टि से देखा जाये तो भारत से हिन्दू स्वातंत्र्य के उठ जाने के अन्य कारणों में पृथ्वीराज को दिल्ली का राज्य प्राप्त होना भी एक प्रधान कारण माना जा सकता है। अस्तु जो हो।

यह बहुत ठीक बात है कि जैसा होने को होता है, बुद्धि भी मनुष्य की वैसी ही हो जाती है। इसीके अनुसार न तो राजा अनंगपाल ने ही इस पर कुछ विचार किया और न पृथ्वीराज, सोमेश्वर जी तथा अन्य सामन्तों ही ने इसके भविष्य परिणाम पर विचार की दृष्टि डाली। अतः सबों की यही सम्मति निश्चित ठहरी कि इस अनायास ही प्राप्त राज्याधिकार को छोड़ना कभी उचित नहीं है। और इसीके अनुसार पत्र का उत्तर दे भी दिया गया। अतः कुछ दिनों के पश्चात् पृथ्वीराज ने बड़े समारोह के साथ अपने-अनेक शूरवीर सामन्तों सहित दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। वहां पहुँचते ही उनका बड़ा स्वागत किया गया। पश्चात् शुभ दिन देखकर सम्वत् ११३८ मार्गशीर्ष शुक्ल ५ गुरुवार को बड़े समारोह के साथ पृथ्वीराज को अनंगपाल ने दिल्ली की गद्दी पर बैठाया। प्रजागणों ने अपनी आन्तरिक प्रसन्नता प्रकट कर हृदय से उन्हें स्वागत किया। खूब आनन्द उत्सव मनाया गया। दूसरे दिन बड़ी धूमधाम से पृथ्वीराज की सवारी शहर में निकली। फिर संध्याकाल को दरबार लगा। पृथ्वीराज राज्यसिंहासन पर आसीन हुए। इस प्रकार अनंगपाल ने दिल्ली की राजगद्दी पृथ्वीराज के सुपुर्द कर वाणप्रस्थ ले लिया। संसार से तो वे

विरक्त हो ही गये अब इस काम से फुर्सत पाते ही घर अपनी सहधर्मिणी सहित सबों से बिदा होकर बद्रिकाश्रम को चले गये। और इधर पृथ्वीराज न्यायनीति के साथ आनन्दपूर्वक राज्यशासन करने लगे।

नवां परिच्छेद।

पानीपत की लड़ाई।

पृथ्वीराज को दिल्ली की राजगद्दी क्या मिल गयी, मानों उनके विपक्षियों के मन में और भी ईर्ष्या की आग जल गयी। यद्यपि यह कार्य अनंगपाल ने अपनी बुद्धि के अनुसार अच्छा किया था, तथापि इससे खास कर भीमदेव और मुहम्मदग़ोरी भीतर ही भीतर और भी अधिक जल भुन गये। एक तो योंहीं ये लोग फूटी आंख से भी पृथ्वीराज की उन्नति देखना पसंद नहीं करते थे, दूसरे दिल्ली प्राप्ति ने तो और आग में घी का काम कर दिया। साथ ही एक और नया और जबर्दस्त शत्रु इनका विरोधी बन कर खड़ा हो गया। यह नवीन जबर्दस्त शत्रु और कोई नहीं, कन्नौज का बलवान् राजा जयचन्द ही था। यदि न्यायतः देखा जाये तो दिल्ली का वास्तविक उत्तराधिकारी जयचन्द ही था। अपने न्यायतः हक़ को पृथ्वीराज ने हथिया लिया यह सुनकर जयचंद एकदम क्रोध से आगबबूला होगया। अनंगपाल की इस कार्रवाई से उसके हृदय में बड़ी भारी ठेस लगी। यद्यपि उस समय अवसर न देख मन ही मन मसोस कर वह चुप रहा परन्तु वह आग उसके मन में भीतर ही भीतर बराबर सुलगती रही और संयोग

पाकर वही आग इस प्रकार से भभक उठी कि अन्त में एक बारगी ही भारत को पराधीनता की बेड़ी में सदा के लिये जकड़ जाना पड़ा।

अब मुहम्मद गोरी अच्छी तरह मन में समझ गया था कि सम्मुख युद्ध में पृथ्वीराज को जीत लेना बिल्कुल असंभव है। अतः उसने निश्चय कर लिया कि अब बिना राजनीतिक चालों तथा चतुराई से काम लिये कार्य सिद्ध न होगा। पृथ्वीराज के हाथों उसने जो २ अपमान सहे थे वह सब बराबर उसके हृदय में विषाक्त बाण की तरह चुभ रहे थे। और वह इसी धुन में लगा हुआ था कि किस उपाय से पृथ्वी-राज से अपना बदला चुकाऊं। अन्त में उसे कपट का एक सूत्र मिलही गया। अतः मुहम्मद गोरी ने पहले, किसी चतुरजासूस को भारत भेजकर पृथ्वीराज के समस्त राज्य सम्बन्धी आचार विचार तथा न्याय नीति का पता लगा लेना उचित समझा और इसके लिये उसने ऐसे ही एक आदमी का खोज करना आ-रम्भ किया, दैवसंयोग से ऐसे ही समय उसे एक 'माधवभाट' नाम का ऐसा व्यक्ति मिल गया जो बड़ा ही चतुर और कई भाषाओं को जानने वाला पूर्ण विद्वान् था। बस उसने उसी माधव भाट को बहुत तरह से समझा बुझा और प्रलोभनों में फंसा कर पृथ्वीराज का भेद लेने के लिये दिल्ली की ओर रवाना किया। माधव भारत के कई स्थानों पर घूमता हुआ दिल्ली जा पहुंचा। वहां पहुंचते ही उसने अपनी बुद्धि-

मानो तथा विद्वत्ता का ऐसा अच्छा परिचय दिया कि शीघ्र ही लोगों से वह हिलमिल गया। इसके बाद फिर धीरे २ पृथ्वीराज के कई सभासदों और सामन्तों में मेल जोल बढ़ाकर वह उनका विशेष स्नेह-भाजन बन गया। कहते हैं पृथ्वीराज के दर्बार में एक धर्मायन नामका कायस्थ रहता था। उसी से माधव ने कौशल से अपनी चतुराई के जाल में फंसा कर बहुत सी राज-नैतिक गुप्त बातें मालूम कर लीं। फिर कुछ दिन के बाद उसी के द्वारा पृथ्वीराज के पास पहुँचकर उनका भी कृपापात्र वह बन गया। राजा की उस पर पूर्ण कृपादृष्टि देख और लोग भी उसका सम्मान करने लगे। इस प्रकार धीरे २ सबों को अपनी मुट्ठी में करके वहां का सब रीति रिवाज, राज-नैतिक चाल व्यवहारों को उसने शीघ्र ही मालूम कर लिया। अन्त में फल यह हुआ कि पृथ्वीराज के घरेलू तथा राजनीति सम्बन्धी समस्त बातें संग्रह कर यहां से विदा हो वह गज़नी की ओर चल पड़ा। उसको कोई भी पहचान न सका कि यह कौन, कहां से और किस उद्देश्य से यहां आया था? अस्तु उसने गज़नी जाकर पृथ्वीराज की दिल्ली प्राप्ति से लेकर अन्त तक की सब घटनायें, उनकी राजनैतिक चालें, आचार व्यवहार रक्षादि सब बातें गोरी को कह सुनायीं।

पृथ्वीराज की इस तरह वृद्धि और उन्नति का समाचार सुन शहाबुद्दीन और भी ईर्ष्या की आग से जल उठा। उसने मन में विचारा कि अब तो पृथ्वीराज को जीतना और

भी असंभव है। एक तो वह पहले ही से दुर्जय था, अब दो २ राज्यशक्ति से शक्तिवान् होकर तो वह और भी अजेय हो गया है। ऐसी अवस्था में उससे पार पाना बड़ा ही कठिन है। मन में उसने इतना सोच तो लिया पर फिर भी भारत के वैभव की आशा वह त्याग न सका। उसकी लुब्ध-दृष्टि उस पर ऐसी पड़ी थी कि वह एक बारगी ही भारत-विजय के लिये चंचल हो उठा। उसी समय अपने बड़े २ सरदारों की एक बड़ी भारी सभा करके उसने इस विषय की आलोचना करनी आरम्भ की। भरी सभा में माधवभाट ने पुनः उसी बात को दुहराकर कह सुनाया। इस पर बहुत कुछ वितर्क और विवाद होने के बाद यह निश्चय हुआ कि यह हिन्दू है, इसकी बातों पर विश्वास करना उचित नहीं। संभव है कि यह उन लोगों से मिल कर हम लोगों को ठगने और भेद लेने आया हो। इस लिये कोई दूसरा ही मनुष्य वहां भेजकर असल बात का पता लगा लिया जाय।

उसी समय मुहम्मद खां नाम का व्यक्ति सभा से उठ खड़ा हुआ और फकीर का वेश धारण कर दिल्ली की ओर चल पड़ा। वह भी सीधे धर्मायन से जाकर मिला। धर्मायन ने उसे भी पृथ्वीराज के सब शासन भेद बता दिये। इसके बाद उसने भी जाकर मुहम्मद गोरी से वही सब बातें कहीं जो माधव ने कही थीं। इससे मुहम्मद गोरी बड़ा ही घबड़ा उठा। अपने सरदारों और मंत्रियों से वह सलाह करने लगा

कि अब क्या करना चाहिये। उसके मंत्रियों ने भी पृथ्वीराज के बल वीरता की यथेष्ट सराहना की। उन्होंने कहा ऐसी अवस्था में निस्संदेह पृथ्वीराज को परास्त करना दुष्कार्य है। फिर भी एक बात का सहारा हम लोगों को अवश्य है कि धर्मायन हमारे तरफ मिला हुआ है। बहुत वाद विवाद के बाद प्रधान मंत्री ने भारत पर पुनः आक्रमण करने की सलाह दी। कारण उसे विश्वास था कि इस बार धर्मायन की सहायता से अवश्य हम लोग विजय लाभ करेंगे।

दूसरे ही दिन सेनानिरीक्षण का कार्य आरम्भ हो गया। धीरे २ सारी सेना एकत्रित होकर युद्ध-सज्जा से सजने लगी। इस प्रकार एक विकट सेनादल साथ लेकर मुहम्मद गोरी भारत-विजय की आशा से भारत की ओर चल पड़ा। गज़नी से चलकर वह तीन दिन तक नारौल नामक स्थान पर पड़ाव डाले पड़ा रहा। यहां उसके अन्यान्य सहायक सरदार जागीरदार लोग भी उससे आकर मिले। इस प्रकार एक बहुत बड़ी टिड्डीदल के समान विशाल सेना लेकर पृथ्वीराज से युद्ध करने के लिये चल खड़ा हुआ। 'रासो' में लिखा है, इसबार मुहम्मद गोरी की सैन्य संख्या दो लाख से अधिक थी। सेना एकत्र करने में उसने बड़ी चेष्टा की थी।

उधर पृथ्वीराज आनन्द पूर्वक अपनी सुन्दरी रानियों के साथ विहार कर रहे थे। ऐसे ही समय गुप्तचर द्वारा उन्हें एकाएक यह समाचार मिला कि मुहम्मद गोरी भारत पर

बढ़ा चला आ रहा है, वरन् उसकी सेना सिंध नदी पार भी कर चुकी है। उसी समय इस समाचार से उनकी निद्रा टूटी। प्रधान २ सामन्तों तथा वीरप्रवर मंत्री कैमास को बुलाकर परामर्श किया कि अब क्या करना चाहिये। किस प्रकार इस पुराने शत्रु को रोकना चाहिए। इस पर कैमास ने अपनी सम्मति प्रगट करते हुए कहा कि शत्रु को आगे बढ़कर ही रोकना अच्छा है। उसे अपनी सरहद पर पैर कभी न रखने देना चाहिए। कैमास की यह सलाह सबों को जंच गयी। अतः उसी के अनुसार अपनी चुनी हुई सत्तर हजार सेना साथ लेकर पृथ्वीराज शीघ्र ही पानीपत नामक स्थान पर युद्ध के लिये पहुँच गये।

उधर मुहम्मद गोरी भी दल बांधकर बराबर अग्रसर होता चला आ रहा था। बस क्या था दोनों ओर की वीर सेनाओं में शीघ्र ही पानीपत के मैदान में मुठभेड़ हो गयी। रणभेरी और मारू बाजे बज उठे। हाथियों के चीग्घार और वीरों के हुंकार से आकाश गूँज उठा। वीर लोग रणमत्त हो प्राणों की ममता त्याग कर विकट हुँकार के साथ अपने दुश्मनों पर भूखे बाघ की तरह टूट पड़े और अपने २ सेनापतियों के उत्साह पूर्ण वचन से उत्साहित होकर दोनों ओरकी सेना भीषण युद्ध करने लगी। अपने २ स्वामियों की जयकामना करते हुए वीरगण युद्धाग्नि में जीवनबलिदान कर रहे थे। वीरश्रेष्ठ कन्हराय ने इसी समय ऐसी अद्भुत वीरता

दिखायी कि मुसलमानों के पांव उखड़ गये। सारी सेना यवनों की तितिर बितिर होकर भाग खड़ी हुई। यह देख मुहम्मद गोरी शोक से विचलित हो उठा। यद्यपि उसने भागती हुई सेना को साहस दिलाकर पुनः युद्धक्षेत्र में ला खड़ा किया किन्तु परिणाम इसका कुछ न हुआ। यवनसेना ने जो पीठ दिखाई तो रुकने का नाम न लिया। पृथ्वीराज की अजेय तल- वार, की धार ने हजारों यवनसैन्यों का रक्त पान किया। दोनों महावीरों के हाथ से इतने यवन मारे गये, कि लाशों की ढेर लग गयी। इसी समय चामुण्डराय ने मुहम्मद गोरी को देख लिया, फिर क्या था बिजुली की तरह वह उसके पास पहुंच गया। अन्त में चामुण्डराय के हाथ परास्त होकर मुहम्मद गोरी बंदी हो गया 'रासो' के मतानुसार यह युद्ध सम्वत ११३८ वैशाख सुदी१० को हुआ था। अस्तु जो हो।

इस बार भी विजय-लक्ष्मी पृथ्वीराज का ही अंक-शायिनी हुई। मुहम्मद गोरी अगणित सेना मरवा कर पृथ्वीराज की बंदी हो गया। पृथ्वीराज की ओर के भीम, भारावह, श्यामदास, जसधवल, केसरीसिंह, रणवीर सोलङ्की, सतार खींची, महतराय, हरिप्रमार, वीरध्वज, भीमसिंह, बघेल, लखनसिंह आदि सामन्त तथा १००० सैनिक इस युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए। और शहाबुद्दीन की ओर के शेरखां, सुल्तानखां, मारूमीर, मीरजहां, मीरजुम्मन, गजनीखां, मीर महम्मद, मीर फतहजंग, हसन खाँ प्रभृति दस मुख्य सेनापति और अठारह

हजार सैनिक काल-कवलित हुए। इस प्रकार अपने वीर सरदारों को खोकर मुहम्मद् गोरी मन में बड़ा ही दुखित हुआ किन्तुं फिर भी पृथ्वीराज से बदला लेने की धुंन उसके शिर पर से उतर नहीं सकी।

विजयी पृथ्वीराज आनन्द पूर्वक सेना सामन्तों के साथ बंदी मुहम्मद गोरी को साथ ले दिल्ली लौट आये। वहां उन्होंने गोरी को एक महीने तक अपने यहां कैद रखा, फिर उसे डरा-धमका कर बहुत सा द्रव्यले, छोड़ दिया। बिचारा लाञ्छित गोरी छोटा सा मुंह लिये पुनः अपने देश लौट आया किन्तु फिर भी वह पृथ्वीराज को नीचा दिखाने की ताक में लगा ही रहा।

—:***:—

दसवाँ प्रकरण।

महाराणा समरसिंह और पृथा कुमारी।

जिस समय इधर दिल्ली में पृथ्वीराज का प्रताप-सूर्य्य अपनी अखंड किरणों से भाग्याकाश पर चमक रहा था, उस समय चित्तौड़ के पवित्र राज्यसिंहासन पर महाराणा समरसिंह सुशोभित हो रहे थे। उनकी भी बलवीरता और साहस का डंका चारो तरफ बज रहा था।वे बड़े ही प्रतिभाशाली वीर पुरुष थे। इतने बड़े महाराणा होने पर भी उनमें घमएड छू तक नहीं गया था। वे सदा सादे तपस्वियों के वेश में ही रहा करते थे। उनकी न्यायनीति, प्रजापालन तथा वीरता की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हुए महाकवि चंद अपने 'रासो' नामक ग्रन्थ में लिखते हैं कि वास्तव में उनके समान, धीर स्वभाव, साहसी, रणकुशल उस समय मेवाड़ में दूसरा कोई नहीं था। वे बड़े ही धर्म परायण सत्यवादी, और शुद्ध चरित्र वाले थे। वे सदा मीठे वचन बोलते, कभी किसी के साथ कठोर व्यवहार न करते थे। प्रजा उनपर सदा मुग्ध रहती और उन्हें आदर की दृष्टि से देखती। समरसिंह के इन्हीं सब गुणों पर मुग्ध होकर ही गोहिलोत और चौहान जाति के सारे सैनिक तथा सामन्त उनपर अत्यन्त शुद्ध भक्ति रखते थे।

चंदकवि ने खुले शब्दों में इस बात को स्वीकार किया है कि इस महाकाव्य में जहां २ जो २ राजनीति, शासनपद्धति संबंधी उपदेश दिये गये हैं उन सबों का अधिकांश भाग महाराणा समरसिंह के उपदेशों के आधार पर ही लिखा गया है। अस्तु !

पृथ्वीराज के अतिरिक्त पृथा नाम की कन्या भी सोमेश्वर जी चौहान को थी। अतः लोगों से रावल समरसिंह की प्रशंसा सुनकर उन्हीं से अपनी कन्या का विवाह करना उन्होंने निश्चय कर लिया। उन्होंने समझ लिया था कि ऐसे योग्य वीर पुरुष से संबंध स्थापित करने से पृथ्वीराज को एक और भारी सहारा मिल जायेगा। अस्तु, इसीके अनुसार दूत पृथा कुमारी के विवाह संबंधी पत्र लेकर उदयपुर चला गया। साथही साथ वीरवर कन्ह चौहान और पुरोहित गुरुराम भी समरसिंहके पास जा पहुंचे। उस समय समरसिंह भव्यरूप धारणकर एक व्याघ्रचर्म पर विराज रहे थे। उनकी भव्य वीरमूर्ति, तेजोमयी कान्ति, शान्तस्वभाव, गंभीर मुखाकृति आदि देखकर गुरुराम मुग्ध हो गये। और उसी समय उन्होंने पृथाकुमारी का विवाह संबंध उनसे स्थिर कर लिया। समरसिंह ने भी इस संबंध को सादर स्वीकार कर लिया, और विदाई में कुछ पुरस्कार स्वरूप उन्होंने गुरुराम जी को द्रव्य देना चाहा। किन्तु उन्होंने स्वीकार न किया। अस्तु इसके एक महीना बाद ही पृथा कुमारी से राणा समरसिंह जी का विवाह हो गया, इस प्रकार

रावल और चौहान घराने में एक अटूट आत्मीयता सदा के लिये स्थापित हो गयी।

समरसिंह और पृथा कुमारी दोनों में विवाह बँधन बँध जाने के साथही साथ चित्तौड़ का राजघराना और चौहान जाति सदा के लिये एक दूसरे के अटूट स्नेहपाश में जकड़ गयी। यह बँधन पृथ्वीराज, और समरसिंह के जीवन में एक बार भी न टूटा। चौहान लोग समरसिंह के नीतिवल, चरित्र बल और समरबल से और भी बलवान् हो गये। मानों सोने में सुहागा मिल गया। यह देख शत्रुओं की आखें उलट गयीं। छाती दहल उठी। वे मनही मन इस संबंध को कोसने लगे। बस उस समय से प्रत्येक रणक्षेत्र में दोनों वीर, समरसिंह और पृथ्वीराज एक साथ ही शत्रु संहार करते थे, कोई भी कार्य बिना समरसिंह से परामर्श किये पृथ्वीराज न करते थे।

—:o◯o:—

ग्यारहवाँ प्रकरण।

देवगिरि का युद्ध और शशिवृता हरण।

शशिवृता देवगिरि के राजा भानराय यादव की कन्या थी, वह बड़ी ही रूपवती सुन्दरी रमणी थी। उसकी सुन्दरता की प्रशंसा एक दिन एक नट ने आकर पृथ्वीराज से की, बस उनका हृदय उस पर चलायमान हो गया। परन्तु वह इधर एक दूसरे ही काम में फँसे हुए थे। और साथ ही उस समय मुहम्मद गोरी के भी पुनः भारत पर आक्रमण करने की आशंका हो रही थी।

भानराय अपनी कन्या शशिवृता का पाणिग्रहण कन्नौज के राजा जयचंद के भतीजे वीरचंद कमधुज्ज से करना चाहते थे। इसके लिये उन्होंने ब्राह्मण द्वारा जयचंद के पास टीका भी भेज दिया था। ब्राह्मणदेव टीका लेकर कन्नौज गये। किन्तु इधर शशिवृता के मन में पृथ्वीराज की वीरमूर्ति बैठ गयी थी। उनकी वीर गाथा, शूरता की प्रशंसा सुनकर वह उन्हें अपना हृदय अर्पण कर चुकी थी। और पृथ्वीराज भी यह सब समाचार पहले ही से जानते थे।

अब पाठकों को पहले उस काम का विवरण देना उचित समझते हैं जिस काम में पृथ्वीराज फँसे हुए थे, बात यह हुई

कि पृथा कुमारी का विवाह संबंध समरसिंह जी से हो जाने से पृथ्वीराज को एक बहुत बड़ा सहारा मिल गया था। दोनों राज्यों में दिन पर दिन घनिष्ठता बढ़ती जाती थी। समरसिंह जी अपने उदार नीति और उचित विचारों से सदा पृथ्वीराज को सहायता देते रहते थे। और वह भी उन्हीं के विचारानुसार कार्य करते थे।

चरदाई का कथन है एक बार पृथ्वीराज दिल्ली से अजमेर जा रहे थे। रास्ते में खट्टू बन पड़ता था। अतः उन्होंने देखा "वहां पासही एक तालाब है। उसी के किनारे एक पत्थर की मूर्ति बनी हुई है, उसी के मस्तक पर यह लिखा था 'सिर कटे धन संग है, सिर सज्जे धन जाये' अस्तु बहुत विचार करने पर भी पृथ्वीराज को इस लिखावट का अर्थ समझ में न आया। तब उन्होंने इसका अर्थ अपने मंत्री कैमास से पूछा— कैमास बड़ाही विलक्षण बुद्धिवाला, प्रतिभावान् पुरुष था। उसने उसी समय उसका अर्थ समझा दिया और कहा कि, इस स्थान पर एक बहुत बड़ा खजाना है। आप यदि इसे निकालना चाहें तो शीघ्र समरसिंह जी को बुला भेजें। इस संबंध में आपको उनसे यथेष्ठ सहायता मिलेगी।

वास्तव में उस समय समरसिंह को बुलाना भी परमावश्यक था। कारण उनके आ जाने से पृथ्वीराज को दो कामों में सहायता मिलने की संभावना थी। एकतो यह कि भोलाराय भीमदेव इनसे अपना वैर साधने की ताक में लगा हुआ

था। अतः उसको दमन करने के लिये एक रणनीति विशारद, चतुर व्यक्ति का होना नितान्त आवश्यक था। दूसरे उधर शहाबुद्दीन भी अपना बदला चुकाने की धुन में लगा रहता था। अस्तु, कैमास के परामर्शानुसार, समरसिंह जी को बुलाने के लिये, चण्डमुण्डीर के साथ अन्य कई सामन्तगण अनेकों प्रकार के दिव्य उपहार लेकर चित्तौड़गढ़ चले गये। और इधर नराधम विश्वासघाती धर्मायन ने अपना एक विश्वस्त दूत भेजकर मुहम्मद गोरी को इन सब समाचारों से सूचित कर दिया। इसने जाकर धर्मायन की ओर से यह कहा कि पृथ्वीराज इस समय खट्टू वन में खजाना निकालने की धुन में व्यस्त हैं। बस समय उपयुक्त है, मौका अच्छा है। पृथ्वीराज से अपना बदला यदि लेना चाहो तो फौरन चले आओ।

चण्डमुण्डीर ने जाकर समरसिंह से चलने के लिये प्रार्थना की। रावल समरसिंह जी उसी समय अपनी सेना सामन्तों के साथ पृथ्वीराज के पास आ पहुँचे। चन्दकवि लिखते हैं उसी समय धर्मायन द्वारा आमंत्रित होकर अपने चुने हुए सरदारों के साथ शहाबुद्दीन भी धड़धड़ाता हुआ उनके शिर पर आ धमक गया। किन्तु इधर उसके आने के पहले ही कैमास की चतुराई और बुद्धिमानी से सबप्रबन्ध हो चुका था। नागौर में समरसिंह जी भीमदेव का मार्गरोध करने के लिये शीघ्र चल पड़े, और पृथ्वीराज भी यह सोच कर कि पहले आगे बढ़ कर शहाबुद्दीन को परास्त कर लें, तब पीछे

धन निकालने में हाथ लगावें सेना सहित आगे बढ़े। बस इस बार नागौर के पास ही पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन दोनों में मुठभेड़ होगयी। दोनों ओर की सेना आपस में जूझ गयीं। समरसिंह जी नागौर ही में थे। उनसे भी पृथ्वीराज को यथेष्ट सहायता मिली। अतः परिणाम यह हुआ कि असंख्य सवारों और सरदारों को कटवा कर शहाबुद्दीन पुनः बन्दी होगया।

शहाबुद्दीन के कैद होने का समाचार शीघ्र ही ग़ज़नी पहुँच गया। वहाँ से उसी समय लोरकराय खत्री नाम का एक दूत मुहम्मदग़ोरी को मांगने के लिये आ पहुँचा। उसने बड़ी विनय पूर्वक ग़ोरी को छोड़ देने की प्रार्थना की। तब उसकी अनुनय विनती पर प्रसन्न होकर पृथ्वीराज ने अनेक प्रकार के उपहार धन द्रव्य तथा शृंगारहार नामक एक बढ़िया हाथी आदि लेकर मुहम्मदग़ोरी को छोड़ दिया।

इसके बाद इस कार्य से छुट्टी पाते ही पृथ्वीराज द्रव्य निकालने के काम में लग गये। इस बार उन्हें एक बहुत बड़ा ख़जाना हाथ लगा। इसका आधा हिस्सा उन्होंने समरसिंह को देना चाहा था किन्तु उन्होंने स्वयं उसे न लेकर और भी धन अपने पास से मिलाकर सैनिकों में बँटवा दिया। इस प्रकार पृथ्वीराज के दोनों कार्य सिद्ध हुए। खजाना भी मिला और शत्रु को भी परास्त कर नीचा दिखाया। वास्तव में समरसिंह की सहायता से ही उन्हें यह सफलता मिली था।

अब इन दो कामों से छुट्टी पाते ही उनका ध्यान पुनः

शशिवृता की ओर आकर्षित हुआ। धीरे २ शशिवृता के ब्याह का दिन निकट आया। कन्नौज से वीरचन्द कमधुज्ज अपनी सेना सामन्तों सहित वरात साजकर देवगिरि की ओर चल पड़ा। बस यह समाचार पाते ही अपने निरीह देशभाइयों के रक्त से अपनी प्रबल कामाग्नि को शान्त करने के लिये सेना सहित पृथ्वीराज भी आगे बढ़े! वे अपनी प्रेम-पिपासा शोणित नदी बहाकर मिटाना चाहते थे।

बड़े २ वीर सामन्तगण और दस हजार सेना उनके साथ चली, क्योंकि इस बार एक बहुत ही भीषण युद्ध होने की विशेष सम्भावना थी। शोक! पृथ्वीराज तुम्हारे समान वीर भारतरक्षक पुरुष को एक तुच्छ नारी के लिये इस प्रकार रक्तपात मचाना क्या शोभा देता था! यह वीरों की हुंकार, तलवारों की धार, देश भाइयों का रक्तपात स्वदेश रक्षा के लिये शोभा देता है। न कि नारी प्रेम को अपनाने के लिये।

इधर जब शशिवृता के हृदय की बात उसके माता पिता को मालूम हुई तो वे लोग बड़े असमंजस में पड़ गये। तो भी शशिवृता को एकबार उन्होंने बहुत तरह से समझा बुझा कर पृथ्वीराज की ओर से उसके मन को फेरने की बड़ी चेष्टा की किन्तु सब व्यर्थ हुआ, वह किसी प्रकार भी वीरचन्द को ब्याहने के लिये राजी नहीं हुई। तब लाचार देवगिरि के राजा ने अपने मन्त्री हमीर से इस विषय में सलाह ली। उसने उत्तर में अपनी सम्मति प्रकट करते हुए यही कहा कि आप अपनी

कन्या का विवाह जैसे भी हो वीरचन्द ही से कीजिए। कारण कि टीका भेजकर आप वचन हार चुके हैं। किन्तु कन्या के प्रेम के वश में होकर उसने गुप्त रूप से एक पत्र इस आशय का पृथ्वीराज के पास लिख भेजा कि शशिवृता शिव मंदिर में रहेगी। आप आकर चुपचाप उसे ले जाइये। ऐसा न हो कि यह भेद मेरा लोगों को मालूम हो जाये, अन्यथा मुझे विशेष लांछित तथा अपमानित होना पड़ेगा।

बस अब क्या था, पत्र पढ़ते ही पृथ्वीराज गुप्त रूप से देवगिरि जा पहुँचे। सेना संचालन का भार नरनाह कन्ह के ऊपर छोड़ कर अपने साथ वे निड्ढूरराय और यादवराय बग्गरी को ले गये थे। वे भेष बदल कर देवगिरि के आसपास इधर उधर घूमने लगे। पृथ्वीराज के आने का समाचार शशिवृता भी जान गयी थी। एक दिन जब पृथ्वीराज घूमते हुए देवगिरि के किले के नीचे पहुँचे तो उनकी चंचलदृष्टि शशि-वृता पर पढ़ गयी। शशिवृता ने भी इन्हें देख लिया। दोनों प्रेमाकुल ही एक दूसरे के लिये लालायित हो उठे उसी समय शशिवृता अपने पिता से आज्ञा ले शिवपूजन को चल पड़ी। उस समय कमधुज्ज की सेना और शशिवृता के पिता की सेना भी उसके साथ थी।

समय बड़ा ही भयंकर था। किन्तु चतुर पृथ्वीराज ने इस समय बड़ी ही चतुराई से काम लिया। झट उन्होंने अपने सैनिकों को योगियों का वेश बनाकर वीरचन्द कमधुज्ज की

सेना में सम्मिलित हो जाने की आज्ञा दे दी। सैनिकों ने यही किया। वे सब गुप्त वेश में अस्त्रों को छिपाते हुए विपक्षियों की सेना में जा मिल गये। इधर पृथ्वीराज भी एक सुन्दर घोड़े पर सवार होकर चटपट मंदिर के पास जा डट गये। और शशिवृता के आने की प्रतीक्षा करने लगे! शीघ्र ही शशिवृता सखियों के साथ शिवपूजन कर मंदिर से बाहर निकली, मंदिर की सीढ़ी पर वह पहुँच भी न पाई थी कि शीघ्रता-पूर्वक पृथ्वीराज ने उसका कर-कमल पकड़ कर उठा लिया, और घोड़ी की पीठ पर बैठाल कर वायु वेग से एक ओर को निकल गये।

हाय! पाठक! अब इस शशिवृता के कारण भी भयंकर रक्तपात मचने का समय आ गया। एक तुच्छ नारी के लिये हजारों रणबांकुरे वीर मर मिटेंगे। ज्यों ही पृथ्वीराज का शशिवृता को लेकर भागते देखा त्योंही वीरचन्द की सेना क्रोध से सिंहनाद कर गरज उठी। रंग में भंग पड़ गया। कहाँ मंगल के गीत और बाजे बज रहे थे, कहाँ रणभेरि और मारु बाजे बज उठे। शस्त्रों से सुसज्जित हो केसरिया वस्त्र पहने, बड़े ठाट से वीरचन्द कमधुज्ज शशिवृता को व्याहने आरहा था। इस तरह एकाएक अपने मुंह के कौर को अपने शत्रु द्वारा छीनते हुए देख कर वह क्रोध से आग बबूला होगया। हाय! जिस शशिवृता सुन्दरी की सुन्दर मूर्ति का ध्यान उसे स्वप्न में भी चैन लेने नहीं देता था, जो उसके हृदय की एक

मात्र अधिष्ठात्री देवी हो रही थी, वही आज इस प्रकार पृथ्वीराज द्वारा हरी जाते देख वह म्यान से तलवार खींच उनकी ओर भूखे बाज की तरह झपट पड़ा। उसने चाहा कि शशिवृता को पृथ्वीराज से छीन लें। किन्तु उसी समय कपट वेशधारी पृथ्वीराज के सैनिकगण कपट गुदड़ी फेंक उसकी ओर लपक पड़े, और गरज २ कर लगे शस्त्र चलाने। देखते ही देखते देखते ऐसी भयंकर मार काट मची कि रक्त की नदी बह चली। किसी प्रकार शत्रुओं से बचते हुए पृथ्वीराज शशिवृता के साथ शिविर में जा पहुंचे।

अब क्रम से युद्ध ने भयंकर रूप पकड़ा। भीषण मार काट मची। इस बार कन्ह की आंखों की पट्टी भी खोल दी गयी, उसने इस प्रकार शत्रु-दलन करना आरम्भ किया की विपक्षीदल घबरा उठे। इस समय राजा भान के ऊपर बड़ी भारी विपत्ति आ पड़ी। अपनी कन्या के प्रेम के वशीभूत होकर उसने यद्यपि पृथ्वीराज को पत्र लिखकर बुला तो लिया सही, पर अब आत्मरक्षा का कोई उपाय न देख वह कमधुज्ज के साथ मिल गया। अब संध्या होने में कोई विलम्ब न था किन्तु उधर सैनिकगण युद्ध से विरत होना नहीं चाहते थे। थोड़ी ही देर के युद्ध में शशिवृता का भाई भी परलोक सिधारा, तब अन्त को राजा भान ने अपनी हार स्वीकार कर युद्धस्थल से सेना हटाली। परन्तु वीरचंद डटा रहा, इस प्रकार हार स्वीकार करना उसने अपमान समझा। अस्तु रात हो

गयी, तब दोनों ओर के सैनिकगण युद्ध से विरत हो विश्राम के लिये अपने २ शिविर में चले गये।

दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही पुनः रणभेरी बज उठी। दोनों ओर की सेना युद्धभूमि में जा खड़ी हो गई। आज भी युद्ध ने पुनः भीषण रूप धरा। आज कमधुज्ज का वीर प्यारा सहचर खूज खवास भी वीरगति को प्राप्त हुआ। उसकी मृत्यु से बड़ा ही दुखित हो कमधुज्ज घबड़ा उठा। उसने उसी समय अपने सामन्तों से सलाह की कि अब इस विषय में क्या करना चाहिये। उनके सामन्तों ने घोर विरोध करते हुए कहा कि एक स्त्री के पीछे व्यर्थ हजारों मनुष्यों को कटाना उचित नहीं है। जिस उपाय से हो युद्ध को बन्द कर देने ही में भलाई है।

अस्तु, कमधुज्ज को भी यह सलाह पसंद आ गयी। उसी समय सेना को हटाकर युद्ध से उसने हाथ खींच लिया। बिचारे कमधुज्ज ने तो इस विचार से सेना हटाई कि व्यर्थ का रक्तपात न हो, किन्तु उधर पृथ्वीराज की सेना ने यह समझा कि वीरचंद की सेना हार कर भाग रही है। उसका बल घट गया है। इस विचार के आते ही पृथ्वीराज की सेना उन पर टूट पड़ी। यह देख कमधुज्ज की सेना क्रुद्ध होकर पुनः युद्ध क्षेत्र में डट गयी, क्योंकि वास्तव में उसका बल क्षीण नहीं हो गया था। पुनः युद्ध होने लगा। इस बार निड्डूरराय ने अपने मालिक पृथ्वीराज की ओर से बड़ो ही वीरता से यहां भयंकर युद्ध किया। देखकर कायरों के हृदय कांप उठे। सायं

काल होतेर उसने वह वीरता की वानगी दिखायी कि दुश्मनों के छक्के छूट गये, कमधुज्ज की सेना में हड़कम मच गयी। उसके नौ मुख्य २ सरदार युद्ध में काम आये।

इसी समय वीरचंद के पिता को चांडमुण्डिर ने देख लिया। उनके मस्तक पर सदा चांदी का छत्र लगा रहता था। चांद मुण्डिर ने ऐसा एक बाण मारा कि वह क्षत्र कट कर भूमि पर गिर पड़ा। छत्र के कट कर गिर पड़ते ही सारी सेना में हा २ कार मच गया। स्वयं कमधुज्ज भी अत्यन्त भयभीत हो उठा। उसे विश्वास हो गया कि युद्ध में अब विजय लाभ करना असंभव है। व्यर्थ वीर सरदारों के कटवाने में लाभ ही क्या?

उस समय सायंकाल हो चुका था। इसलिये दोनों ओर के वीर सैनिकगण विश्राम के लिये अपने २ शिविर में चले गये। उधर कमधुज्ज इस युद्ध विषयक परामर्श करने के लिये अपने मंत्रियों के साथ बैठा और इधर पृथ्वीराज अलग ही अपने शिविर में सलाह करने बैठे। बहुत तर्क वितर्क के बाद पृथ्वी-राज के मंत्रियों ने यह कहा कि आप शशिव्रता को लेकर दिल्ली चले जाइये, हमलोग यहां दुश्मनों से निपट लेंगे। आप निश्चिन्त रहिए। किन्तु पृथ्वीराज किसी प्रकार भी इस पर सहमत नहीं हुए। बोले कि, हमारा यह धर्म नहीं है कि आप लोगों को विपत्ति में यहां छोड़कर हम दिल्ली चले जायं और सुख पूर्वक आनन्द मनायें। ऐसा नीच कर्म मुझसे कभी न होगा। यह सुन लाचार सबके सब चुप हो गये।

दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही पुनः वीरगण युद्ध के लिये तय्यार हो गये। रणवाद्य वज कर वीरों को उत्साह दिलाने लगा। दोनों ओर की सेना ने अपने २ स्थान पर जाकर अड्डा जमाया। आज के युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से निड्डूराय सेनापति नियुक्त हुये। निड्डूराय की युद्ध चातुरी, वीरता ने शत्रुओं के दांत खट्टे कर दिये। आज का युद्ध और भी भयंकर हुआ था। किन्तु तो भी विजयमाला पृथ्वीराजही के गले पड़ी। वीरचांद कमधुज्ज पकड़ लिया गया। किन्तु पृथ्वीराज की आज्ञा से तुरन्त ही वह छोड़ दिया गया। बोले, अब अपना कार्य सिद्ध हो गया व्यर्थ उसे पकड़ने से क्या लाभ? शत्रु पर दया दर्शाना ही वीरों की शोभा है।

ज्योंहीं पृथ्वीराज उधर दिल्ली लौट गये त्योंही उधर वीरचांद ने अपनी पराजय का प्रतिशोध, अपमान का बदला राजा भान से लेने का निश्चय कर उसी समय देवगिरि को चारो तरफ से घेर लिया। इसके बाद कुछ सेना शीघ्र भेजने का अनुरोध करते हुए उसने इधर की सारी बातें जयचांद को लिख भेजी। इस प्रकार पुनः शत्रुओं से बेहतर अपने को घिरा हुआ देखकर राजाभान ने भी सहायता की प्रार्थना करते हुए पृथ्वीराज को एक पत्र लिख भेजा। उसमें लिखा था कि आप ही के कारण मेरी यह दशा हुई है, दुश्मन घेरा डाले पड़े हैं। अतः अब देवगिरि की रक्षा का भार आपही पर है।

शीघ्रही इसने कन्नौज पहुँच कर, वीरचांद का पत्र जयचांद

को दिया। पत्र पढ़ते ही जयचंद मारे क्रोध के अधीर हो उठा। एक तो वह योंही पहले से दिल्ली की राजगद्दी के न पाने के कारण मारे क्रोध और ईर्ष्या से मनही मन जल रहा था, दूसरे इस समाचार ने और भी उसकी क्रोधाग्नि में घृताहुति डाल दी। अतः दांत पीसता हुआ; पृथ्वीराज को नीचा दिखाने के उपाय में वह लग गया। अपने सारे मंत्रियों को बुलाकर उसी समय उसने एक बड़ी भारी सभा की। सभा में इस बात का विचार होने लगा कि इस विषय में अब क्या करना चाहिये। बहुमत से यही निश्चय हुआ कि पृथ्वीराज से अवश्य बदला लेना चाहिये। अतः उसी समय अपने अधीनस्थ सारे राजे और सामन्तों को अपने सैन्यदल के साथ शीघ्र आ उपस्थित होने के लिये पत्र लिख भेजे। प्रतिज्ञा किया कि इस बार पृथ्वी-राज का गर्व खर्व कर भानराय को उसकी करणी का फल चखाऊंगा। इसके बाद राजसूययज्ञ करके भारत साम्राट कहाऊंगा।

यथा समय सब राजे; सामन्तगण अपनी सेना सहित आ २ कर कन्नौज में एकत्रित होने लगे। सेना संगठन कार्य बड़े जोरों पर चलने लगा। दूसरे ही दिन सारी सेना संगठित हो गयी। इसके बाद राजा जयचंद भी अपनी सेना में आकर सम्मिलित हो गया। आगे २ उसकी सैनिक ध्वजा बड़े भारी वृक्ष के समान चलने लगी। उसके पीछे सारा सैन्य समूह, अनेकों वीर योद्धा एक २ कर अग्रसर हुए। उसी समय नरवर

के राजा का छोटा भाई अमरसिंह और दीर्घकाय महाबलशाली पंगुराय भी अपनी २ सेना सहित उससे आ मिले। इस प्रकार एक बड़ी भारी सेना और वीर सामन्तों को साथ लेकर कन्नौजाधिपति जयचंद पृथ्वीराज चौहान तथा राजा भानराय से बदला लेने के लिये चल पड़ा।

उधर भान का पत्र लेकर दूत भी यथा समय दिल्ली पहुँचा। पत्र पढ़ कर पृथ्वीराज ने राजा भान की सहायता करना अपना कर्तव्य समझा। अतः उन्होंने उसी समय एक पत्र इस आशय का समरसिंह जी को लिख भेजा कि यहां की दशा ऐसी हो रहा है, ऐसी अवस्था में एक मात्र आपही का हमें सहारा है। आशा है अवश्य आप आकर हमारी सहायता करेंगे। अस्तु पत्र पाते ही समरसिंह जी सहर्ष पृथ्वीराज को सहायता देने के लिये तय्यार हो गये।

इसके पहले ही समरसिंह जी को यह समाचार ज्ञात हो चुका था कि मुहम्मद गोरी पुनः भारत पर आक्रमण करना चाहता है। अत उन्होंने पत्र में इस बात को बहुत जोर देकर लिखा कि सावधान! अब दिल्ली छोड़ कर अन्यत्र कहीं जाने का विचार न कीजियेगा। उसकी रक्षा का भार आपही पर है। आप कुछ सामन्त मेरे साथ कर दें। मैं देवगिरि का प्रबंध कर लूंगा। आप उधर दत्तचित्त होकर साम्राज्य की रक्षा करते रहिये। न मालूम कब यवन सेना दिल्ली पर आक्रमण कर बैठे।

वेदवाक्य की भांति समरसिंह की सलाह मानकर पृथ्वी-

राज ने उसी के अनुसार कार्य भी करना आरम्भ कर दिया। अस्तु उनकी आज्ञा से उसी समय चामुण्डराय और जैतसी पमार समरसिंह की सहायता के लिये चल पड़े। इधर रावल समरसिंह की आज्ञा से उनके छोटे भाई अमरसिंह सेना सहित देवगिरि की रक्षा के लिये चल खड़े हुए।

यद्यपि वीरचंद जयचंद का भतीजा देवगिरि में डेरा डाले पड़ा था। तथापि वह कुछ कर न सका था। उसी समय एका एक रात्रि के समय चामुण्डराय ने उसपर आक्रमण कर दिया। एक तो वर्षा की अन्धकारमयी रजनी, दूसरे घन घोरवृष्टि होने के कारण वीरचंद की सेना पहले ही से घबड़ा रही थी। ऐसी ही अवस्था में सहसा वर्षा के साथ २ तीरोंकी वर्षा होते देख उसकी सेना में बड़ी हलचल मच गयी। सब सैनिक घबड़ा उठे। इतना होने पर भी वीरचन्द की सेना युद्धभूमि में डटी रही। फ़िर क्या था दोनों ओर के सिपाही, शूरगण आपस में जूझ गये, गहरी लड़ाई छिड़ गई। इतने ही में पीछे से एका एक समरसिंह के अमरसिंह की भाई भी सेना सहित वीरचन्द की सेना पर गरजते हुए टूट पड़े। बस क्या था युद्ध ने और भी भीषण रूप धारण कर लिया। वीरगण एक २ कर अपने शत्रु को तलवार के घाट उतारने लगे।

उधर जयचंद भी बराबर देवगिरि का समाचार लेता रहता था। जब उसने सुना कि वीरचंद की सेना विपत्ग्रस्त हो रही है तो और भी तेजी से अग्रसर होता हुआ वह युद्ध-

स्थल में जा पहुंचा। उसकी इच्छा थी कि वहां पहुँचते ही एकाएक लगे हाथों धावा कर देवगिरि का किला अपने अधिकार में कर लें। किन्तु उसकी यह इच्छा पूर्ण न हो सकी। वहां पहुंचने पर उसने देखा कि किला बहुत ही सुदृढ़ लम्बा चौड़ा और खाइयों से घिरा पड़ा है। अतः लाचार पड़ाव डाल कर उसे अन्य उपायों का अवलम्बन करना पड़ा।

जयचंद बड़ाही चतुर और कूटनीतिज्ञ था। राजनीतिक चालों द्वारा दुर्ग रक्षकों को घूस देकर अपनी ओर मिला लेने की उसने बड़ी चेष्टा की। परन्तु उसकी यह चेष्टा सफल न हो सकी। तब उसने फिर दूसरी युक्ति निकाली। उसी समय उसने किले में सुरंग लगाने का हुक्म दे दिया। किन्तु किले की खाई इतनी ऊंची थी कि उसकी यह भी युक्ति व्यर्थ गई। इस प्रकार जब उसने अपने साम, दाम, दण्ड तीनों राजनैतिक अस्त्रों को विफल होते देखा तो अन्त में भेद नामक चौथे राजनैतिक शस्त्र का प्रयोग किया और अपने एक चतुर कीर्तिपाल नामक भाट को भानराय के पास भेजकर संधि का प्रस्ताव किया। और समझाया कि हम दोनों मिलकर एक साथ ही दिल्ली पर आक्रमण करें और अपने अपमान का बदला चुकायें। यद्यपि यह सब बातें कीर्तिपाल ने एकान्त में जाकर भानराय से कही थीं तथापि राजा भान ने अपने मन्त्री से इस विषय में सलाह पूछा। मंत्री ने उत्तर दिया—"शत्रु की बातों पर कभी विश्वास न करना चाहिए। राजा, योगी, सींग वाले जानवर

अग्नि, सर्प और शत्रु ये कभी विश्वास करने योग्य नहीं होते। जयचंद ने यह एक चाल आपको धोखे में फंसाने के लिये रची है।" राजाभान के मन में मंत्री की यह उचित सलाह बैठ गयी। मंत्री की दूरदर्शिता देखकर वे बड़े ही प्रसन्न हुए। उन्होंने उसी समय जयचन्द के इस घृणित प्रस्ताव को अस्वीकार कर उसे जवाब दे दिया। अब जयचंद निरुपाय हो गया। किसी प्रकार भी वह किले पर अधिकार जमा न सका। तब लाचार झुंझला कर उसने अपने सैनिकों को देवगिरि राज्य में लूट मार मचाने की आज्ञा दे दी। साथही कई स्थानों पर जबर्दस्ती अपना शासन जमाने का व्यवस्था करने लगा! परन्तु चामुण्डराय और अमरसिंह की सेना ने उसके इस कार्य में भी बराबर बाधा पहुँचाई जिससे इस काम में भी वह कृत-कार्य न हो सका।

जयचंद ने जब देखा कि अपने राज्य से इतनी दूर आकर मैं भारी विपद में पड़ गया हूं तो, वह मनही मन झुंझला उठा वास्तव में बात ठीक भी थी, वह न तो देवगिरि के आसपास वाले गावों पर अधिकार जमा कर कुछ प्रबंध ही कर सकता था और न किले पर ही उसकी कुछ दाल गल सकती थी। इस समय चामुण्डराय और समरसिंह की सेना द्वारा उसके कितने ही सैनिक परलोक सिधार चुके थे। अतः मंत्रियों ने इन सब बातों को अच्छी तरह समझाते हुए जयचंद से कहा कि आपका देवगिरि के पीछे पड़े रहना व्यर्थ है। यदि आप

इसे जीत भी लें तो भी इतनी दूर से यहां का शासन प्रबंध संभाले रहना असंभव है। जिस बात के लिये झगड़ा था वह तो होही गयी, शशिव्रता पृथ्वीराज की अंकशायिनी बन ही चुकी थी। अब व्यर्थ रक्तपात मचाने से क्या लाभ?

इस समय निरुपाय हो जयचंद ने अपने मंत्रियों की सलाह मान लेना ही उचित समझा। अस्तु उसने उसी समय डेरा डण्डा उठाकर सेना को प्रस्थान करने की आज्ञा दे दी। सब सेना अपना झोली झंडा संभाल कर कन्नौज को लौट चली।

बारहवाँ परिच्छेद ।

अजमेर पर चढ़ाई ।

—※※※—

कहते हैं मालवा के राजा और सोमेश्वर जी चौहान दोनों में कुछ दिनों से अनबन हो रही थी। दोनों एक दूसरे के परम शत्रु होरहे थे। इस शत्रुता का कोई भी कारण क्यों न हो, पृथ्वीराज की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई कीर्ति, मालवाधिपति को असह्य हो रही थी। वह नहीं चाहते थे कि पृथ्वीराज की इस तरह उन्नति हो। हा पाठक! इसी आपसी द्वेष और फूट के कारण आज भारत देश पराधीनता की बेड़ी में जकड़ा हुआ रो रहा है। भाई भाई की उन्नति और कीर्ति नहीं सह सकता, बस वह यही चाहता है, कि हमारे रहते हुए यह कैसे बढ़ जायेगा। किसी प्रकार सर्व नाश कर डालो, तभी छाती ठंढी होगी। हा! इसी कठिन रोग ने हमारे भारतीय सपूतों का सर्वनाश कर डाला।

मालवा के राजा भी इसी रोग से ग्रसित होने के कारण शत्रुता के वशीभूत हो पृथ्वीराज से बदला लेने का अवसर ढूंढ़ रहा था। ऐसे ही समय उसे पता लगा कि पृथ्वीराज अब अजमेर में नहीं रहते, वे सदा दिल्ली ही में रहते हैं, और उनके साथ उनकी सेना तथा सामन्तगण भी रहते हैं। बस यह

अच्छा अवसर देख उसने अपने अधीनस्थ राजाओं को एकत्र कर अच्छी सेनाका संगठन कर लिया और चटपट अजमेर पर आक्रमण कर बैठा। पाठक जानते ही हैं कि सोमेश्वर जी युद्ध रक्तपात, लड़ाई से सदा अलग रहना चाहते थे, शान्ति ही के वे अधिक उपासक थे। अस्तु इस प्रकार एकाएक नई विपत्ति को सर पर घहराते देख वे घबड़ा उठे। किन्तु घबड़ाने से कोई लाभ न देख कर उन्होंने कर्तव्य की ओर ध्यान दिया। उसी समय अपने सामन्तों सरदारों से परामर्श कर शत्रुदलन का एक अच्छा उपाय ढूंढ निकाला। मालवाधिपति यादव-राय की सेना चम्बल के उस पार वरत्रास नामक स्थान में डेरा डाले पड़ी थी। बस एक रात्रि को अपने सामन्तों सहित सेना लेकर यादवराय पर टूट पड़े। उसकी सेना बिलकुल असावधान हो निश्चिन्त पड़ी थी। कारण उन्हें क्या मालूम था कि इस प्रकार एकाएक रात के समय बला उनपर टूट पड़ेगी ? साथ ही रात के समय कभी युद्ध न होता था। अस्तु, यादवराय की सेना युद्धभूमि से पराङ्मुख हो भाग खड़ी हुई और यादवराय को सोमेश्वर जी के सैनिकों ने पकड़ कर बन्दी कर लिया। वह युद्ध में बहुत ही आहत हो गया था। सोमेश्वर जी ने उसकी चिकित्सा कराई और आराम के साथ लगभग एक महीना अपने पास रख कर पुनः उसे छोड़ दिया।

इधर अजमेर का तो यह हाल हुआ, अब उधर दिल्ली का भी समाचार सुन लीजिए। जब शहाबुद्दीन गोरी कई बार

पृथ्वीराज से हार खाकर अपमानित हुआ, किसी प्रकार भी उन्हें नीचा न दिखा सका तब लाचार उसने एक दूसरी ही कूटनीति का आश्रय लिया। वास्तव में उसकी यह राजनीति काम भी कर गयी। रासो में लिखा है, पृथ्वीराज के शासन से दिल्ली की प्रजा असंतुष्ट हो रही थी। अतः उसने जाकर अनंगपाल से फरियाद की कि आप एक दूसरे अनजान व्यक्ति को राज्यशासन का भार देकर चले आये, यह अच्छा नहीं किया। इससे प्रजा को बड़ा कष्ट पहुँच रहा है। वह सदा दुखी रहता है। अतः अब आप शीघ्र चल कर राज्य का शासन कार्य अपने हाथ में पुनः लीजिए, नहीं तो प्रजा में आपके बिना अशान्ति अधिक बढ़ जायगी।

आज यह पहला ही अवसर था कि पृथ्वीराज के शासन से प्रजा के असन्तुष्ट रहने का समाचार अनंगपाल को मिला। इसके पहले ऐसा अवसर कभी नहीं आया था। विचार करने से मालूम होता है कि यह भी एक शहाबुद्दीन की राजनीतिक चाल है, हो सकता है कि उसके पक्षपाती विश्वासघाती देश द्रोही धर्मायन द्वारा ही यह कार्य प्रतिपादन हुआ हो, कोई असंभव नहीं कि उसीने लोगों को उभाड़ कर पृथ्वीराज की ओर से अनंगपाल का कान भरवा दिया हो। जो हो, गोरी का यह अस्त्र चल गया, तीर निशाने पर जा बैठा। प्रजा की यह बात अनंगपाल के मन में बैठ गयी। उसी समय पृथ्वीराज को अनंगपाल का पत्र मिला जिसमें लिखा था कि दिल्ली की

राजगद्दी छोड़ कर अभी अलग हो जाओ। किन्तु पाया हुआ माल क्या कोई यौंही छोड़ देता है? जो ऐसा करे उसे महा-मूर्ख समझना चाहिए, फिर भी माल भी कोई ऐसा वैसा नहीं, दिल्ली की राजगद्दी! भला पृथ्वीराज कैसे सहज ही में छोड़ सकते थे? अतः पृथ्वीराज ने पत्र का उत्तर देते हुए स्पष्ट शब्दों में लिख दिया कि हम ऐसा नहीं कर सकते।

यद्यपि राजा अनंगपाल ने वाणप्रस्थ लेकर तपस्वी का भेष धारण कर लिया था तथापि उनके मित्रदल, पक्षपाती लोग यथेष्ट संख्या में विद्यमान थे। अतः सहज ही में अनंगपाल ने थोड़ा सैन्य संग्रह कर शीघ्र ही दिल्ली पर आक्रमण कर दिया इधर पृथ्वीराज यह देख कर बड़े असमंजस में पड़े कि अब क्या करना चाहिये। वह उनसे कभी युद्ध करना नहीं चाहते थे, कारण एक तो वह नाते में उनके नाना लगते थे। दूसरे इन्हीं के द्वारा उन्हे एक बड़ा भारी राज्य मिल गया था। अस्तु उन्होंने इस विषय में कैमास से सलाह करके किले का द्वार वन्द करवा दिया। केवल भीतर से आत्मरक्षा मात्र ही वे करते रहे। तब विवश होकर अनंगपाल को वापस लौट जाना पड़ा।

जब शहाबुद्दीन को यह खबर लगी तो उसने इस अवसर को अपना हित साधन के लिये बड़ा ही उपयुक्त समझा। उस समय अनंगपाल हरिद्वार में थे, उसने वहीं अपना एक दूत भेज नाना प्रकार के प्रलोभन देकर अन्त में अनंगपाल जी को

अपनी ओर मिला ही लिया। वृद्धावस्था में मनुष्य की बुद्धि भी विपरीत हो जाती है। अतः अनंगपाल भी बुढ़ापे के आधीन हो ही गये थे। इस कारण उनकी बुद्धि भी धीरे २ कम होती जा रही थी। बस विचारे अनंगपाल चालाक शहाबुद्दीन के कपट जाल में फंस ही गये, अतः उससे मिलकर एक भारी सेना सहित वे पुनः दिल्ली पर चढ़ आये।

इस बार अनंगपाल को एक विधर्मी यवन-शत्रु के साथ आया हुआ देख वे बड़े ही दुखित हुए, अब वे अपने को शान्त न रख सके। अस्तु उसी समय किले का फाटक खुलवा कर, रण-सज्जा से सज्जित हो, शहाबुद्दीन पर टूट पड़े। अनंगपाल का तो उन्होंने बिलकुल ही ध्यान छोड़ दिया, केवल मुंहम्मद ग़ोरी को दण्ड देना ही आवश्यक समझा।

इस बार गोरी ने अपने प्रधान मन्त्री तातार खाँ ही को सेनापति बनाया था। पृथ्वीराज ने अपने सैनिकों को भली भांति समझा कर इस बात की ताकीद कर दी कि अनंगपाल जैसे भी हो, जीवित ही पकड़ लिये जायं।

दोनों दलों में खूब घनघोर युद्ध हुआ। इसमें संदेह नहीं कि इस बार ग़ोरी के वीर सरदार मारूफ खां, खुरासान खां, तातार खां आदि पृथ्वीराज से अपने अपमान का बदला लेने की इच्छा से जी जान से लड़े थे, अपनी वीरता प्रदर्शित करने में उन्होंने कोई भी त्रुटि नहीं की थी। वे इस प्रकार उन पर टूट पड़े जिस प्रकार भेड़ों के झुण्ड में शेर टूट पड़ता है। किन्तु

जिन्हें उन लोगों ने भेड़ समझ रखा था वास्तव में वे भेड़ नहीं सिंह ही थे। उन सबों ने ऐसी वीरता से युद्ध किया कि शीघ्र ही यवन सेना का गर्व चूर हो गया, सब ऐंठना वे भूल गये। लड़तेरदोनों ओर की सेना एकदम रणोन्मत्त होगयी, दोनों ने जी खोलकर अपनी २ करामात दिखाई किन्तु अभी भारत का सौभाग्य सूर्य अस्ताचल को पहुंच नहीं गया था, उसे विदेशियों के हाथ पराधीनता की बेड़ी में जकड़ने के लिये अभी कुछ विलम्ब था। अतः बहुत कुछ शिर पटकने पर भी गोरी को पराजित हो जाना पड़ा। चामुण्डराय के हाथ शहाबुद्दीन बंदी हो गया, और आदर के साथ अनंगपाल भी पकड़ कर किले में लाये गये। इस बार भी पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन को बहुत कुछ समझा बुझाकर, और कुछ कर लेकर छोड़ दिया।

अनंगपाल अपना निबुर्द्धीता पर बहुत लज्जित हुए, वे एक वर्ष तक दिल्ली में रहे। उनके साथियों ने उन्हें बहुत तरह से धिक्कारा और समझाया कि भला आप ने यह क्या कर डाला? व्यर्थ अपने मान, यश, गौरव तथा राज्य का आप सर्वनाश कर रहे हैं? यदि आपको ऐसा ही करना था तो पहले ही पृथ्वीराज को दिल्ली का राज्य देना न था। क्या बिना समझे बूझे ही अपने नाती को आपने दिल्ला का उत्तराधिकारी बनाया था? आप ऐसे नीतिवान को ऐसी मूर्खता शोभा नहीं देती! अस्तु, अपनी करनी पर पछताते हुए उन्होंने अपनी भूल स्वीकार की। इसके बाद दिल्ली में रहना उचित

न समझा वे शीघ्र पुनः बदरिकाश्रम चले आये। पृथ्वीराज उन्हें स्वयं पहुंचाने के लिये हरिद्वार तक चले आये थे। अस्तु,

धीरे २ पृथ्वीराज का बढ़ता हुआ प्रताप और बल विक्रम आदि देखकर बहुत से राजे लोग उनके शरणागत हो रहे थे। उनकी धाक इतनी जम गई थी कि बड़े २ राजे महाराजे भय से सदा कांपा करते थे। दक्षिण प्रान्त के कई राजे भी इन्हीं में शामिल थे। इन सबों ने मिलकर एक कर्नाटकी नाम की सुन्दरा कन्या पृथ्वीराज को भेट की। यह बड़ी ही रूपवती और नाचने गाने में पूर्ण दक्षा थी।

बस कर्नाटकी को ले आना पृथ्वीराज के लिये काल हो गया। यह भी एक पूरी सर्वनाश की जड़ ही थी। भारत में फूट की आग सुलगाने में इसने यथेष्ट सहायता पहुंचाई थी। इसके द्वारा पृथ्वीराज के घर में भी विद्वेष और फूट का बीज वपन हो चुका था। पहला काम तो पृथ्वीराज का यही अनुचित हुआ था कि उसे लाकर उन्होंने अपने महल में रखा। बस यही जहर हुआ। अस्तु जो हो चन्दकवि रासो में लिखते हैं कि पृथ्वीराज केवल विक्रम और पुरुषार्थ की गाथा सुन २ कर उनसे सदा शंकित और भयभीत रहा करते थे। उन्हें प्रसन्न करने के लिये वे लोग प्रायः अनेकों बहुमूल्य उपहार मणि माणिक्य आदि भेंट में दिया करते थे। ऐसे ही उन लोगों ने आपस में परामर्श कर यह अनर्थ की जड़, कर्नाटकी नाम की परम सुन्दरी हाव-भाव-सम्पन्ना रमणी पृथ्वीराज को उपहार

में भेंट की। अभी छोटी अवस्था होने पर भी कर्नाटकी गान विद्या में बड़ी निपुण थी। यह देख उस विद्या में उसे और भी पारंगत बनाने के लिये पृथ्वीराज ने एक कल्हड़ नामक नट को सौंप दिया और ताकीद कर दी कि इसे गान विद्या की उच्च शिक्षा दी जाये। वह वेश्या पुत्री होने के कारण इस विषय में उसे पहले ही से बहुत कुछ ज्ञान था उस पर सुदक्ष के हाथ में पड़ जाने से इस गान विद्या में उसका पूर्ण विकाश हो गया शीघ्रही इन विषयों में वह पण्डिता हो गयी। तब एक दिन अवसर देखकर कल्हड़ ने इसे पृथ्वीराज को सौंप दिया। अस्तु उसी दिन से वह नवयौवना सुन्दरी पृथ्वीराज के महल में रहकर अपने हावभाव तथा गायन से उनको मोहित करने लगी।

—***—

* तेरहवाँ प्रकरण *

इन्द्रावती।

दिन पर दिन पृथ्वीराज की अवस्था उन्नत होने लगी। इस समय उनका प्रताप-सूर्य अपनी मध्यान्ह रेखा में पहुँच कर अपनी प्रखर विजय किरण संसार में फैला रहा था। उनका विजयी डंका भारत के कोने २ में इस प्रकार बज उठी कि भारत के बहुत से नृपतिगण उनके दव-दवे से भय विह्वल होने लग गये थे। शहाबुद्दीन कितनी ही बार कितने ही प्रकार से सिर पटक २ कर रह गया, पर उनका कुछ भी बिगाड़ न सका। ईर्ष्या और विद्वेष की आग से दिन रात अपने हृदय जलाते रहने पर भी जयचन्द उनका बाल बांका न कर सका। अभी कुछही दिन पहले की बात है कि पिता के युद्ध में कन्नौज का राजा जयचंद अपनी अगणित सेना कटवा कर उनसे परा-जित हो चुका था। वर्णन योग्य कोई विशेष घटना न होने से इसका पूर्ण विवरण यहां नहीं दिया गया है। इस लड़ाई में पृथ्वीराज की वीरता और विजय प्राप्ति देख कर उज्जैन के राजा भीमदेव ने अपनी सुन्दरी कन्या इन्द्रावती का विवाह वीर केसरी पृथ्वीराज से कर देना चाहा। अतः उसने अपने

कुल पुरोहित को टीका देकर विवाह संबंध ठीक करने के लिये पृथ्वीराज के पास भेज दिया। पृथ्वीराज उन दिनों उज्जैन के पास ही शिकार खेल रहे थे। पुरोहित राजा भीमदेव की ओर से टीका लेकर पृथ्वीराज के पास वहीं पहुंच गये। पृथ्वीराज ने सहर्ष टीका स्वीकार कर लिया। व्याह पक्का हो गया।

इतने ही में वीरवर पृथ्वीराज को खबर मिली कि गुजरात के राजा भोलाराय भीमदेव सैन्य सहित चित्तौड़ गढ़ पर चढ़ आया है। अतः ऐसी अवस्था में अपने विपद्-सखा, परम हितैषी अभिन्न हृदय बंधु की रक्षा करना पृथ्वीराज ने अपना सबसे पहला कर्त्तव्य समझा। अतः उसी समय वे समरसिंह जी की सहायता के लिये चित्तौड़ की ओर दौड़ पड़े। रास्ते ही में समरसिंह जी के दूत से उनकी भेंट हो गई। समरसिंह का भेजा हुआ वह दूत उन्हीं के पास आ रहा था। उसी दूतके मुंह से उन्हें मालूम हो गया कि चित्तौड़ से लगभग दस बारह कोस की दूरी पर भीमदेव सेनासहित डेरा डाले पड़ा है। अब बहुत ही शीघ्र दोनों में मुठभेड़ होने की संभावना है।

उधर भीमदेव चित्तौड़ पर धावा भी न करने पाया था कि पृथ्वीराज दलबलसहित उसके शिरपर पहुँच गये। इस प्रकार अपनी ओर से आक्रमण होने के पहले ही पृथ्वीराज का आक्रमण होते देख भीमदेव कुछ घबड़ा गया। अतः इधर पृथ्वीराज बिना विश्राम किये ही एकदम भीमदेव की सेना पर टूट

पड़े। इस एकाएकी आक्रमण से घवड़ाकर लाचार भीमदेव की सेना पीछे को लौट चली। किन्तु उसी समय ठीक पीछे से रावल समरसिंह की सेना ने इस प्रकार जोर से भीषण आक्रमण किया कि भीमदेव की सेना न तो आगे ही वढ़ सकी न पीछे ही लौट सकी! लाचार वाध्य हो वह जहाँ की वहीं खड़ी हो गयी। इस प्रकार दोनों ओर की सेना के वीच में पड़ जाने पर भी उसकी सेना अपने स्थान से न हटी। लड़ाई छिड़ गई! इस युद्ध में मीर हुसेन का पुत्र हुसेन खां भी पृथ्वीराज की सेना में सम्मिलित था। इसने वड़ी वीरता दिखाई थी। युद्ध होते २ सन्ध्या होगई किन्तु कोई निपटारा न हुआ।

दूसरे दिन सवेरा होते ही पुनः युद्ध आरम्भ होगया। आज भीमदेव ने नदी पार कर स्वयं चित्तौड़ की सेना पर आक्रमण किया। परन्तु समरसिंह ने इस वेग से उसके आक्रमण को रोक कर प्रत्याक्रमण किया कि गुजराती सेना के छक्के छूट गये। उसी समय पीछे की ओर से पृथ्वीराज की सेना ने और भी मार मचा दी। दिन भर के युद्ध में आज भीमदेव के दस वड़े २ सेनापति मारे गये। इतना होने पर भी वह युद्ध भूमि में डटा रहा। अन्त में सन्ध्या होते २ हुसैन खां ने अपनी असीम वीरता प्रगट करते हुए चालुक्य सेना को पराजित किया। तव लाचार भीमदेव हार खाकर गुजरात लौट गया। पर पृथ्वीराज कुछ दिन तक चित्तौड़गढ़ ही में रह गये।

सभों को मालूम हो गया था कि भोलाराय भीमदेव भाग

गया है। पर वास्तव में वह भाग नहीं गया था। यह उसका केवल वहाना मात्र था। वहीं युद्धस्थल से हटकर कहीं छिपा पड़ा था। जब उसने देखा कि सब लोग निश्चिन्त होगये और पृथ्वीराज आनन्द पूर्वक अपने खेमे में पड़े विश्राम कर रहे हैं, तव एकाएक उसने पुनः चित्तौड़ पर रात के समय आक्रमण कर दिया। इस आकस्मिक आक्रमण से घवड़ा कर लोग जिस अवस्था और जिस वेश में थे, उसी अवस्था और वेश में उठकर शत्रु के आक्रमण को रोकने के लिये तय्यार होगये। आज रात के युद्ध में पृथ्वीराज के बड़े २ वीर नामी सामन्त वीर वागरी, जैतसी का छोटा भाई रूपधन कुमार, किल्ह जैसिंह मोरी लखीसिंह आदि वीरगति को प्राप्त हुए। किंतु फिर भी विजयलक्ष्मी पृथ्वीराज ही को प्राप्त हुई। भीमदेव पांच हजार सैनिकों के साथ २ नामी सेनापति मेर पहाड़ से भी हाथ धो वैठा। तव लाचार हार मान कर उसे भाग जाने के लिये वाध्य होना पड़ा।

जब पृथ्वीराज समरसिंह की सहायता के लिये चित्तौड़ चले आये थे उस समय उन्हें इन्द्रावती का स्मरण हो आया था। इस कारण उन्होंने अपनी तलवार देकर इन्द्रावती को व्याह लाने के लिये पज्जूनराय को उज्जैन भेज दिया था। कारण उस समय यह प्रथा चली आती थी कि यदि किसी कारणवश वर विवाह में स्वयं उपस्थित न हो सके तो उसका कोई अमात्य वर की कटार या खड्ग लेकर उसके वदले व्याहने

जाया करता था । अतः इसी प्रथा के अनुसार पज्जूनराय पृथ्वीराज के अन्यान्य वीर सामन्तों के साथ उज्जैन जा पहुंचे इन्हें इस प्रकार आया देख भीमदेव ने इसका कारण पूछा— उनलोगों ने पृथ्वीराज के न आ सकने का यथार्थ कारण बता कर तलवार से कन्या विवाह देने के लिये कहा । इसपर उसने कुपित होकर कहा कि मैं उस मनुष्य से अपनी कन्या का व्याह कभी न करूंगा जो स्वयं न आकर अपनी तलवार भेजे । कविचंद भी साथ २ गये थे । उन्होंने भी उसे बहुत तरह से समझाया । अतः अंत में बहुत वादा विवाद के वाद उसने पांच दिन का अवकाश दिया । इन्द्रावती के कान में भी यह बात पहुँच गयी । उसने भी यही प्रतिज्ञा की कि यदि मैं विवाह करूंगी तो पृथ्वीराज से ही करूंगी और किसी से नहीं । अस्तु वात की बात में पांच दिन का समय वीत गया पृथ्वी-राज नहीं आये । तब तो उज्जैन के राजा भीमदेव के क्रोध का ठिकाना न रहा । अतः उसने एकदम बिगड़कर पृथ्वीराज के सामंतो को यह आज्ञा दी कि तुम लोग अभी यहां से निकल जाओ । कोई काम नहीं है । इतना सुनते ही सब सामन्त लोग बिगड़ खड़े हुए । और युद्ध की तय्यारियां करने लगे । इस प्रकार जब देखा कि बात बहुत बढ़ गयी और युद्ध की संभावना हो रही है तो भीमदेव ने अपने मंत्री से सलाह कर के पूछा कि इस समय क्या कर्तव्य है । उत्तर में मंत्री ने अपनी उचित सम्मति प्रकट करते हुए कहा कि आप इंद्रावती

का व्याह पृथ्वीराज की तलवार से कर दीजिए व्यर्थ हठकर के झगड़ा बढ़ाने से क्या फायदा! पर राजा भीमदेव ने मंत्री का बात न मानी। अंत में युद्ध छिड़ गया। दोनों ओर की सेना आपस में लड़ मरने को तय्यार हो गयी। अंत में पृथ्वीराज के सामंतों ने भीमदेव को घेर कर पकड़ लिया।

कुछ गंवा कर और थप्पड़ खाकर तब अंत में राजा भीम की बंद आंखें खुलीं। उसी समय अपनी भूल स्वीकार करते हुए उसने बड़े समारोह के साथ अपनी कन्या इन्द्रावती का व्याह पृथ्वीराज के खड्ग से कर दिया। इस प्रकार यह झगड़ा भी मिट मिटाकर शांत हो गया।

—*o*—

* चौदहवाँ प्रकरण *

इन्द्रावती से पृथ्वराज का विवाह हो गया। इसके पश्चात् कांगडा के मोटी राजा भान को युद्ध में परास्त कर विजयी पृथ्वीराज अपनी सुन्दरी नववधू के साथ दिल्ली में आनन्द विहार कर रहे थे। इसी बीच में रणथम्भ के राजा की कन्या हंसावती से भी व्याह कर अपनी कामेच्छा को थोड़े समय के लिये शांत कर ली थी। ऐसेही समय एकाएक उन्हें समाचार मिलो कि गुजरात के राजा भोलाराय भीमदेव अपनी सेना लेकर अजमेर पर चढ़ आया है।

वात यह थी कि वार २ अपमानित होने, तया ईर्ष्या के कारण भीमदेव इस ताक में सदा लगा रहता था कि किस प्रकार पृथ्वीराज से वदला लें। अस्तु जव वह अपनी ईर्ष्या की आग को मन में दवा न सका तो एक दम उत्तेजित होकरअपने अधीनस्थ राजाओं के साथ अजमेर पर चढ़ाई कर वैठा। यह समाचार सुनतेही सोमेश्वर जी चौहान भी शत्रु को रोकने के लिये युद्ध .सज्जा से सज्जित हो तय्यार हो गये। संयोग से उस समय दिल्ली में पृथ्वीराज भी न थे। दिल्ली की रक्षा उनके सहचर सामंत प्रसंगराय खीची, जयराम यादव, देव-

राज बग्गरी, भानराय,बलभद्र और कैमास आदि वीर गण कर रहे थे। सोमेश्वर भी वीर पुरुष थे। युद्धसे कैसे हट सकते थे। अतः वे अपनी वीर सेना लेकर अजमेर के निकट ही भीमदेव का सामना करने को तय्यार हो गये। दोनों ओर के योद्धा प्राण की ममता त्याग कर लड़े, अन्त में युद्ध करते २ सैनिकों सहित सोमेश्वर जी भी वीरगति को प्राप्त हुए।

जिस समय यह समाचार पृथ्वीराज को मिला उस समय पितृवियोग से वे बड़े ही कातर हो उठे। क्रोध से उनका सारा शरीर जलने लगा। उन्होंने उसी समय प्रतिज्ञा की कि जब तक भीमदेव से इसका बदला न ले लूंगा, जब तक उसे उसको करणी का फल न चखाऊंगा तब तक किसी प्रकार के आनंद में भी योग न दूंगा। न घी खाऊंगा न राज सुख का उपभोग करूंगा। इस प्रकार भीषण प्रण में आबद्ध हो उसी समय वे गुजरात पर आक्रमण करने को तय्यार हो गये। उनके सब सामन्तों ने उन्हें यह सलाह दी कि प्रथम आप अजमेर की राजगद्दी पर बैठकर अपना राज्याभिषेक कार्य पूरा कर लीजिए तब इस ओर ध्यान दीजिए। अस्तु इसी के अनुसार कार्य हुआ। अजमेर में शीघ्रही राज्याभिषेक की तय्यारी होने लगी। अजमेर के राज्यसिंहासनाधिकारी पृथ्वीराज थे ही, अस्तु लाख शिर पटकने पर भी भीमदेव की वहां दाल न गल सकी, अजमेर पर अपनी राज्यसत्ता वह स्थापित न कर सका। तब लाचार उसे सोनागढ़ के दुर्ग में लौट जाना पड़ा।

बिना किसी विघ्न बाधा के राजतिलक कार्य सम्पन्न हो गया। इस काम से फ़ुर्सत पातेही भीमदेव की ओर उनका ध्यान झुक पड़ा। अतः उसी समय उन्होंने पज्जूनराय तथा मलय-सिंह को सेना के साथ भीमदेव से बदला लेने के लिये भेज दिया। उन लोगों ने जाते ही उन २ स्थानों पर अपना अधि-कार ज़माना आरंभ कर दिया जिन २ स्थानों को भीमदेव अपने अधिकार में किये हुए था। भीमदेव यह समाचार सुनते ही क्रुद्ध सिंह की भांति गरजता हुआ इन लोगों पर चढ़ दौड़ा। दोनों ओर की सेना सिंहनाद करती हुई भीषण युद्ध करनेलगी। लड़ते २ सहसा पज्जूनराय ने अपनी वीरता और कौशल से भीमदेव के शिर का छत्र उतार लिया और लेकर चलया बना। इसके बाद उसने वह क्षत्र पृथ्वीराज को अर्पण किया। किंतु पृथ्वीराज ने वह छत्र उसे ही देकर और भी धन सम्पत्ति से पुरस्कृत किया।

किंतु इतनेही से पृथ्वीराज की क्रोधाग्नि शान्त न हुई। अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये वे बड़े ही व्यग्र हो रहे थे। सोमेश्वर जी की मृत्यु घड़ी से ही भीमदेव उनकी आंखों में एक कांटा सा खटकता रहता था। रह २ कर उसे इसका उपयुक्त फल चखाने को वे अधीर हो उठते थे, क्रोध शोक और क्षोभ से उनका किसी काम में मन नहीं लगता था। बदले की आग में वे सदा जला करते थे। अस्तु और भी इसी प्रकार सोच विचार में कुछ दिन बीत गये। अंत में उन्होंने यही

निश्चय किया कि अब एक दम आक्रमण करके उसे दंड देना ही चाहिए। अन्यथा यह विषधर काँटा हमेशा हृदय स्थल में चुभता रहेगा। अतः उसी समय एक विपुल सेना लेकर गुजरात पर आक्रमण करने के लिये, पृथ्वीराज चल पड़े। अभी वह रण सज्जा से सुसज्जित होकर किले से बाहर निकले ही थे कि निडरराय सेना सहित उनसे आ मिला। बस पृथ्वीराज सब सेना सामंतों को लेकर उसी समय शिकार के बहाने गुजरात की सरहद्द पर पहुँच गये।

ज्योंही पृथ्वीराज वहाँ पहुँचे त्योंही भीमदेव के सुचतुर दूतों ने ताड़ लिया और अपने मालिक को जाकर सूचित कर दिया कि पृथ्वीराज चौसठ हजार सेना लेकर अपने पिता का वैर चुकाने के लिये गुजरात की सीमा पर पहुंच गये हैं। उन्होंने यह भी प्रतिज्ञा कर ली है कि जब तक पिता की मृत्यु का बदला न ले लूंगा तब तक न तो घी खाऊंगा और न शिर पर पगड़ी बांधूंगा। इतना सुनते ही उसने अपने अधीनस्थ राजाओं को एकत्र कर एक लाख सेना के साथ पृथ्वीराज का सामना करने के लिये आगे बढ़ चला।

इधर से पृथ्वीराज भी अग्रसर हो रहे थे। जब पृथ्वीराज गुजरात की राजधानी पट्टनपुर के पास पहुँच गये तो उन्होंने कविचंद को एक चोली और लाल पगड़ी के साथ भेजकर कहलवा दिया कि इन दो चीजों में से जो चाहे भीमदेव अपने पास रख ले अर्थात् या तो चोली पहन कर स्त्री बने तब

जान बचेगी, अथवा लाल पगड़ी बांधकर समर भूमि में सामने आ जाये, जिससे मैं उसके सहायकों सहित रक्त की नदी बहाकर पिता के नाम तर्पण कर सकूं। अब वह निश्चय मन में समझ लेवे कि मेरे हाथों उसका निस्तार नहीं। अस्तु जब कविचंद चला तो एक और भी तमाशा करके चला। उसने ऐसी एक दिल्लगी का खेल खेला कि लोग देखकर आश्चर्य चकित होते थे। अर्थात् गले में उसने जाल और नसेनी डालकर एक हाथ में कुदाली और दीपक तथा दूसरे में अंकुश और त्रिशूल ले लिया। बस इसी वेश में वह सीधे पट्टनपुर जा पहुंचा। उसका यह विचित्र स्वांग देखकर हजारों दर्शक उसके साथ हो लिये। इसी प्रकार वेष बनाये वह एक दम राज दर्बार में भीमदेव के सामने जा खड़ा हुआ। भीमदेव कविचंद को पहचानता था। उसने देखते ही पूछा—"आज क्या है जो ऐसा स्वांग रचाया है?" तब कविचंदने उत्तर दिया-"राजन्! इसका अर्थ यह है कि पृथ्वीराज आपको यदि आप भाग कर जल में जा छिपेंगे, जाल से खींच मारेंगे, यदि आकाश में जा चढ़ेगें तो नसेनी से काम लेंगे। यदि पाताल में जा छिपेंगे तो इस कुदाली से खोद कर मारेंगे। और यदि अंधकार में जा छिपेंगे तो इस दीपक के सहारे ढूँढ़ मारेंगे।" यह सुनकर भीमदेव बड़ाही क्रोधित हुआ। उसने भी अण्ड सण्ड बहुत सी बातें बक डाली। कविचंद पर भी वह बड़ा नाराज हुआ। किन्तु कवि लोग अवध्य माने जाते हैं। इस कारण वह चुप हो रहा।

किन्तु उसी समय सेना सजा कर पृथ्वीराज से लड़ने के लिये चल पड़ा ।

पृथ्वीराज भी पहले ही से प्रस्तुत थे । अस्तु दोनों में भयंकर सामना हो गया । आज के युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से निड्डुरराय सेनापति रहे ।

लड़ाई छिड़ गई । पृथ्वीराज की सेना बड़े क्रोध से शत्रुओं का संहार करने लगी । पृथ्वीराज ने अपने हाथों कन्ह की आखों की पट्टी खोल दी । वह बड़े वेग से शत्रु सेना पर टूट पड़ा । कन्ह का सामना करने के लिये उधर से मकवान का पुत्र सारंग मकवान आगे बढ़ा । केहरि कंठीर तथा लोहाना अजानुबाहु कन्ह की सहायता करने लगे । थोड़ी ही देर के युद्ध में सारंग मकवान कन्ह के हाथों यमपुरी सिधारा । मकवान के मरते ही चालुक्य सेना कुछ घबड़ा गयी, उसका बल क्षीण हो गया । किन्तु युद्ध बन्द न हुआ । इसी समय सारंगराय खीची ने इस जोर से आक्रमण किया कि चौहान सेना के छक्के छूट गये । यह देखते ही पृथ्वीराज स्वयं घोड़े को एड़ लगाकर रणभूमि में पहुँच गये । अब क्या था शत्रु सेना में हाहाकार मच गया । एक २ बार के आक्रमण में पृथ्वीराज की तलवार से असंख्य सैनिक भूतलशायी होते थे । थोड़ी देर में ही शत्रु सेना तितर बितर हो गयी, भीमदेव की सारी सेना पीछे हटने लगी । धीरे२संध्या काल हो आया बहुत से शूरवीर सुरपुर सिधारे । इसी समय अकस्मात् भीमा

देव से पृथ्वीराज की मुठभेड़ हो गयी। पैतरा बदलकर दोनों वीर तलवार का वारकरने लगे। साथही दोनों ओर के वीरगण भी अपने २ राजा की रक्षा करने में तत्पर होगये। इसी समय एकाएक भीमदेव उस स्थान पर जा पहुँचा। भीमदेव को देखते ही अग्नि भड़क उठी, अतः झपट कर उसने तलवार का एक भरपूर हाथ ऐसा मारा कि भीमदेव का शिर रुण्डमुण्ड हो एक तरफ गिर पड़ा और धड़ दूसरी ओर तड़पने लगा।

भीमदेव के प्राण रहित होकर गिर पड़ते ही उसकी सेना में हाहाकार मच गया। पृथ्वीराज की सेना जय २ कार कर गरज उठी। उधर स्वामी विहीन गुर्जर सेना पट्टनपुर की ओर भाग चली। इस युद्ध में पृथ्वीराज के डेढ़ हजार घुड़सवार, पांच हजार सैनिक मारे गये। जैतप्नमार विशेष आहत हुआ। इस प्रकार अपने पिता की मृत्यु का बदला भीमदेव से लेकर पृथ्वीराज ने अपना प्रण पूरा किया। पश्चात् पट्टनपुर की गद्दी पर भीमदेव के पुत्र को बिठाकर दुसरे ही दिन वे दिल्ली लौट आये।

* पन्द्रहवाँ प्रकरण *

जयचन्द और राजसूयज्ञ।

अब हम यहां पर कुछ कन्नौज का विवरण दे देना अत्यावश्यक समझते हैं। कन्नौज के राजा जयचंद के पिता विजयपाल बड़े ही प्रतापी राजा थे। उनके बलविक्रम का डंका उस समय सर्वत्र बज रहा था। छोटे मोटे सभी राजाओं पर उनकी धाक जमी हुई थी। एक समय वे दक्षिण प्रान्त के राजाओं का गर्व खर्व करने के लिये सेना सहित निकल पड़े। अस्तु एक २ कर दक्षिण दिशा के कितने ही राजाओं को परास्त करते और उन्हें करद राजा बनाते हुए दल बादल के साथ अन्त में वे कटक पर जा पहुँचे। उस समय मुकुन्ददेव नाम के वीर धीर राजा कटक में राज्य करते थे। कहते हैं उसके पास तीन लाख हाथी और दस लाख पैदल सेना थी। विजयपाल आ रहे हैं, सुनते ही उसने आगे से जाकर उनका आदर पूर्वक स्वागत किया। इसके बाद उपहार में बहुत से रत्न माणिक धन द्रव्य के साथ २ अपनी कन्या भी विजयपाल को उसने अर्पण की। विजयपाल ने सहर्ष उस कुमारी का व्याह अपने एक मात्र पुत्र जयचंद से कर दिया। ज बजयचंद की इस स्त्री की अवस्था सोलह वर्ष की हुई तब

आनन्द संवत् ११३३ में, इसकी गर्भ से रति समान अत्यन्त सुन्दरी रूपवती संयोगिता कुमारी ने जन्म लिया। इसके रूप का बखान लोग उस समय घर २ करते थे।

संयोगिता वास्तव में सुन्दरता की देवी थी। लोग उसे देखते ही उसके रूप पर मुग्ध हो जाते थे। इसी कारण जयचंद भी उसे इतना प्यार आदर करता था कि वह जयचंद के मानो गले की हार हो रही थी। उसे प्रसन्न रखने के लिये उसने कोई भी बात उठा न रखी थी। उसके लाड़ प्यार आदर सत्कार की मात्रा इतनी बढ़ गई थी कि संयोगिता का स्वभाव दिन पर दिन हठी होता जा रहा था। इस लाड़ प्यार और हठो स्वभाव का कैसा विषम फल जयचंद को भोगना पड़ा इसका हाल पाठकों को अगले परिच्छेद में मालूम होगा। उस समय संयोगिता की अवस्था ठीक बारह वर्ष की हो गयी थी जिस समय कि जयचंद आनंद सम्वत् ११४४ में राजसूययज्ञ करने का मनमें विचार कर रहा था। बस यह मूर्खता ही उसके सर्वनाश का कारण हुई।

शायद चालुक्य राय के नाम को पाठक भूले न होंगे, कारण गत परिच्छेदों में कई स्थान पर युद्ध के समय उसका वर्णन आया है। अस्तु यह चालुक्य राय जयचंद का भाई था। इसी की सलाह से ही जयचंद के मनमें राजसूययज्ञ करने की इच्छा जागृत हुई थी। अतः अब अपनी उस इच्छा को कार्य में परिणत कर डालना ही कर्तव्य जाना। राजसूययज्ञ में छोटे से

बड़े सभी राजे महराजों को निमंत्रण देकर बुलाना पड़ता है। इस कारण भारत के भिन्न२प्रान्तों के नृपतियों को एकत्र करने के विचार से उन लोगों के पास निमंत्रण भेजने का उसने निश्चय कर लिया। अतः कन्नौज का राजमहल लोगों के आदर सत्कार तथा दान पुण्य आदि की सामग्रियों से खचाखच भरा जाने लगा। यज्ञ संबंधी सभी उपयोगी वस्तुयें एक २ कर जुटाई जाने लगीं। दूत लोग चारो तरफ निमंत्रण पत्र ले २ कर दौड़ने लगे।

किन्तु जयचांद के मंत्री सुमन्त को उसका यह कार्य अनुचित जान पड़ा उसने उसी समय जयचंद को बहुत तरह से समझा कर इस कार्य से हाथ खींच लेने की प्रार्थना की। कहा राजन्! यह कलिकाल है। आजकल इस यज्ञका सुचारु रूप से सम्पन्न होना बिल्कुल असंभव है। ऐसे अनुचित कार्य पर आप व्यर्थ मन न दीजिए। इससे व्यर्थ बैठे वैठाये और भी आपस में विरोध बढ़ जायेगा। किन्तु जयचांद ने मन्त्री की बातों पर कुछ भी ध्यान न दिया। वरन् उसकी बात अनसुनी करके जयचांद ने उसे आज्ञा दी कि—तुम शीघ्र अभी दिल्ली चले जाओ, और पृथ्वीराज से जाकर कहो "कि वह शीघ्र मेरे राजसूयज्ञ में आकर सम्मिलित हो जाये और जो कार्य भार सौंपा जाय उसे सुचारुरूप में पूरा करे। दिल्ली के राज्याधिकारी हम भी हैं। इस कारण आधा राज्य हमें दे दो। और यज्ञ में उपस्थित होकर सहायता पहुँचाओ।"

बात सहज में मिटने वाली न थी। अतः बहुत संभालने पर भी जब जयचांद की दुर्मति ने उसका साथ नहीं छोड़ा तब लाचार सुमन्त पृथ्वीराज से मिलने के लिये दिल्ली चलागया। नाना प्रकार से सुमन्त ने पृथ्वीराज को समझाया। तब अन्त में यह निश्चय हुआ कि सब सामन्तों को एकत्र कर इस विषय में परामर्श किया जाय कि क्या करना उचित है?

इधर ये बातें हो ही रही थीं कि इतने में दूसरा एक दूत जयचांद की ओर से राजसूयज्ञ का निमंत्रण पत्र लेकर आ पहुंचा। उस पत्र में लिखा था कि शीघ्र यहां आकर जयचांद के आज्ञानुसार: जो कार्य यज्ञ का तुम्हें सौंपा जाय, उसका प्रतिपालन करो। इस पत्र को पढ़ते ही पृथ्वीराज एकदम सन्नाटे में आ गये। उन्होंने भी दूत को बहुत तरह से समझा कर कहा कि जयचांद को राजसूयज्ञ करना उचित नहीं है। तुम लोग जाकर अपने राजा से कहो कि इस काम में हाथ न डाले।

दूत के साथ २ सुमन्त कन्नौज लौट आये। सुमन्त ने पुनः दुबारा जयचांद को समझाबुझाकर इस काम से विरत कराना चाहा किन्तु सब व्यर्थ हुआ। जयचांद ने एक न मानी। फिर मानता कैसे? उस समय तो होनहार का भूत उसके शिर पर सवार था, अज्ञानता ने उसकी बुद्धि को हर लिया था। अतः वह यह सुनते ही मारे क्रोध के अधीर हो उठा कि पृथ्वीराज न तो एक इंच भूमि ही देंगे और न उसकी आधीनता स्वीकार कर यज्ञशाला में सम्मिलित ही होंगे। अस्तु उसने उसी

समय युद्ध विद्या विशारद चालुक्यराय और यवन सेना के स्वामी खुरासान खां को बुलाकर अपने राज्य की रक्षा का भार सौंप दिया और स्वयं बैठकर यह विचारने लगा कि पृथ्वीराज को हराकर जबर्दस्ती पकड़ लाना चाहिए। परन्तु यह काम कोई साधारण काम नहीं था। साथही इधर यज्ञ के समय के निकल जाने की भी आशंका थी। इस कारण पृथ्वीराज की सोने की प्रतिमा द्वार पर स्थापित कर यज्ञ आरंभ करने की आज्ञा दे दी। यही बात पक्की रही और इसी के अनुसार कार्यारंभ हो गया। यह समाचार जब पृथ्वीराज के पास पहुँचा तो उनके सामन्त गण क्रोध से एकदम अधीर हो उठे। पृथ्वीराज की प्रतिमा द्वारपाल की जगह रखी गयी है, यह अपमान असह्य है। अतः सबों की यही राय ठहरी कि अभी आक्रमण कर के उसका यज्ञ विध्वंस करते हुए उसे इस ढिठाई का फल चखा देना चाहिए, अन्यथा उसकी उद्दण्डता और भी बढ़ जायेगी। किन्तु कैमास ने कहा कि अभी ऐसा करना उचित नहीं है। जयचांद का बल विक्रम इस समय अधिक बढ़ गया है। उसको एकाएक दबा डालना कोई सहज काम नहीं है। साथही इस समय बहुत से राजे महाराजे भी वहां उपस्थित हैं। अतः यह सब से अच्छा होगा कि पहले खोजन्दपुर पर आक्रमण करके उसके भाई चालुक्यराय को मार डाला जाये, फिर तो भाई की मृत्यु से आपही जयचंद अशौच में पड़ जायेगा इस प्रकार यज्ञ विध्वंस आपही हो जायेगा।

इसी परामर्शानुसार पृथ्वीराज अपनी सेना सामन्तो सहित खोखन्दपुर की ओर चल पड़े। ज्योंही चौहान सेना ने खोखन्दपुर जाने के लिये कन्नोज की सीमा पर पैर रखा त्योंही वहां बड़ा हाहोकार मच गया क्योंकि पृथ्वीराज की सेना, गांव उजाड़ते, जमींदारों को लूटते पीटते जाने लगी। इससे प्रजा ने बड़ी दुखी हो, चालुक्यराय से जाकर फरियाद की कि महाराज पृथ्वीराज की सेना बड़ी उपद्रव मचा रही है, लूट मार मचा कर उसने हम लोगों के गांव को उजाड़ कर डाला।'

चालुक्यराय यह समाचार सुनतेही एमदम आग बबूला हो गया। वह वीरता में अपना सानी नहीं रखता था अस्तु उसने चाहा कि पृथ्वीराज को अपने राज्य में चढ़ आने के पहलेही मार भगावें। इसलिए वह शीघ्रता पूर्वक युद्ध की तय्यारियां करने लगा। इस तरह सेना संगठित कर एकाएक चालुक्यराय ने विशाल सैन्यदल के साथ पृथ्वीराज को घेर कर आक्रमण कर दिया। पहले तो कुछ चौहान सेना घबड़ा गयी। पर पुनः बड़ी वीरता से शत्रु संहार करने लग गयी। बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। वीरों की हुंकार और गर्जना से आकाश गूंज उठता था इसी समय लड़ते २ पृथ्वीराज ने बाण संधान कर एक ऐसा तीर मारा कि चालुक्यराय का हाथी एकदम भहराकर गिर पड़ा। बस उसी समय चालुक्यराय की सेना घबड़ा कर पीछे हटने लगी। और इधर शत्रु को दुर्बल होकर भागते देख पृथ्वीराज की सेना में और बल का संचार

हो आया, इस प्रकार बलवती होकर उसने शीघ्रही शत्रुदल के छक्के छुड़ा दिये। थोड़ी ही देर की लड़ाई के बाद सहसा कन्ह और चालुक्यराय की मुठभेड़ होगयी। कुछ समय तक तो दोनों बीर बड़ी वीरता से लड़ते रहे। परन्तु एकाएक झपट कर कन्ह ने क्रोध से एक ऐसा हाथ मारा कि चालुक्य राय का शिर कट कर दूर जा गिरा। बस क्या था, चालुक्यराय के मरते ही उसकी सेना भयभीत हो भाग खड़ी हुई। कहते हैं इस युद्ध में चालुक्यराय के पांच हज़ार और पृथ्वीराज के सात सौ सैनिक मारे गये थे। अस्तु,

इस प्रकार शत्रु सेना को परास्तकर पृथ्वीराज की सेना खोखन्दपुर को लूटने के लिये अग्रसर हुई। इसके बाद खोखन्दपुर को लूटकर अपनी विजयी सेना के साथ पृथ्वीराज दिल्ली वापस चले आये।

पाठक! जिस समय यह समाचार जयचांद ने सुना उस समय वह मारे क्रोध के एकदम पागल हो उठा, उसने उसी समय मन्त्री को बुलाकर सेना सजाने की आज्ञा दे दी। इस समाचार से सर्वत्र सन्नाटा छा गया। यह समाचार जयचांद की रानी को भी मालूम हुआ। अतः उसने बहुत तरह से समझाया कि आप पहिले संयोगिता का स्वयम्बर कर लीजिए फिर तब पृथ्वीराज से युद्ध करना क्योंकि इस समय देश देश के नृपतिगण यहां आये हुए हैं। शीघ्रही संयोगिता ने भी यह समाचार सुना। उसका मन पहलेही से पृथ्वीराज की बीर

गाथा की प्रशंसा सुनकर उन पर अनुरक्त हो रहा था। जब उसने यह सुना कि उसके पिता जयचंद पृथ्वीराज से युद्ध करना चाहते हैं तब वह अत्यन्त दुखित हुई। धीरे २ पृथ्वीराज के प्रति उसके प्रेम का बीज अंकुरित होकर फूट निकला। संयोगिता की मा को जब अपनी कन्या के प्रण का हाल मालूम हुआ तो उसने अपने पतिजयचांद से सब कह दिया। अतः जयचांद ने बहुत तरह से समझा कर संयोगिता का मन पृथ्वीराज की ओर से फेर लेना चाहा, उसने कहा कि पृथ्वीराज मेरा परम शत्रु है, तू उससे विवाह करने के लिये अपना हठ त्याग दे, मैं अपने शत्रु से अपनी प्यारी कन्या का विवाह करूं, यह मेरे लिये महा अपमान की बात है। परन्तु संयोगिता ने अपनी सखियों से स्पष्ट कह दिया कि पृथ्वीराज के सिवाय मैं और किसी को भी पति रूप में वरण न करूंगी! सखियों ने उसके हठ की बात आकर जयचांद से कह दी। ऐसा हठ पूर्ण कोरा उत्तर अपनी कन्या का सुनकर जयचांद मारे क्रोध और क्षोभ के पागल हो उठा तब उसने मन में निश्चय कर लिया कि पहले पृथीराज को मारकर ही निश्चिन्त हो जाना उचित है। ऐसा करने से फिर कोई टंटा न रह जायेगा। यह हठीली लड़की भी आपही ठिकाने आ जायगी। जब पृथ्वीराज ही न रहेगा तब दुसहे से विवाह करने में इसे फिर कोई आपत्ति न होगी। किन्तु शोक! उस समय क्रोध के आवेश में उसे इस बात का

ध्यान ही न रहा कि राजपूत बालायें अपने हठ के आगे प्राणों को तुच्छ भी समझती हैं।

अब यज्ञ तो विध्वस हो ही गया था, इसमें कोई संदेह की नहीं रहा। अब उसका एकमात्र लक्ष्य पृथ्वीराज की ओरही झुका था। अस्तु अब कन्नौज की उत्तेजित सेना पृथ्वीराज की खोज में तेजी से दिल्ली को बढ़ने लगी अतः शीघ्रही दिल्ली की सीमापर पहुँच कर उसने वहुत से स्थान को अपने अधिकार में कर लिया और कितने ही गाँव लूट डाले। उस समय पृथ्वीराज राज्य शासन भार अपने सामन्तों को देकर शिकार खेलने गये हुए थे। उनके वीर सामन्तों ने सहजही जयचन्द की सेना को मार भगाया।

कविचंद लिखते हैं कि एक बार शहाबुद्दीन की माँ कितनी ही वेगमों के साथ मक्के शरीफ हज करने जा रही थीं। अतः उन्हे भारत वर्ष के हाँसी प्रान्त होकर जाना पड़ा था। उस समय हाँसीपुर में नरवाहन नामक नागवंशी सरदार सूबेदार के पद पर नियुक्त था। जब शहाबुद्दीन की माँ की सवारी दिल्ली राज्य की सीमा के पास आ पहुँची तब पृथ्वीराज के सामन्तों ने उन्हें लूट लियए। धंन दौलत द्रब्य रत्न आदि तो लूटलिया पर वेगमों को उन्होंने छोड़ दिया। लाचार वे पुनः गजनी लौट गयीं। यह समाचार सुनतेही शहाबुद्दीन मारे क्रोध के बावल हो गया। और उसी समय एक बड़ी भारी सेना लेकर युद्धके लिये चल पड़ा। इधर पृथ्वीराजके सांमतोंको

भी यह खबर लग गयी कि शहाबुद्दीनकी सेना हांमीपुरसे १०कोस दूरी पर पहुँच गयी है। अतः उसी समय चामुण्डरायने सेना सुसज्जित कराकर शीघ्र किले बंदी कर ली। कई दिनों तक लगातार लड़ायी होती रही, किन्तु हांसी के दुर्ग पर किसी प्रकार भी यवन लोग अपना अधिकार जमा नहीं सके। जब यह खबर शहाबुद्दीन को लगी उसी समय एक विपुल सेना दल के साथ स्वयं चढ़ आया। किन्तु पृथ्वीराज और समर सिंह ने उसे इस युद्ध में भी हराकर खदेड़ दिया।
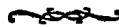
सोलहवाँ परिच्छेद।

महोबा की लड़ाई।

यद्यपि महोबा के युद्ध का यथार्थ कारण ठीक ठीक ज्ञात नहीं होता। तथापि इसमें सन्देह नहीं कि इतिहास देखने से यह घटना सत्य प्रमाणित हो जाती है। चांदकवि लिखते हैं, कि शहाबुद्दीन की सेना को युद्ध में परास्त कर जब चौहान सेना लौटी है तब कितने ही आहतों को साथ में लेकर यह सेना कई राहों से होती हुई दिल्ली को जा रही थी। उस समय बहुत से घायल सैनिकों को साथ लेकर कुछ सेना महोवा की ओर जा पहुंची। वर्षा ऋतु का समय था। ऐसे ही समय पृथ्वीराज के सैनिक लोग आश्रम स्थान की खोज में इधर उधर भटकते हुए चन्देल राजा के बाग में जा पहुंचे। चांदेल राज्य के इतिहास का कुछ ठीक २ पता नहीं लगता। हां इतना अवश्य मालूम होता है कि चांदेल तथा कछवाहों में पहले बड़ी आत्मीयता थी! दोनों मित्रता के एक ही सूत्र में गँधे हुए थे। इन्होंने नवीं शताब्दि में ग्वालियर का किला बनवाया था। तथा सन ११९२ तक ग्वालियर और नरवर पर इनका अधिकार था।

चंदेलों ने महोवा को जीतकर अपने अधिकारमें कर लिया इसके वाद सन् ६२५ ई० में कालिंजर पर भी उन लोगों का अधिकार हो गया। तव से वरावर सन् ११८२ ई० तक चन्देला लोग महोवा कालिंजर पर शासन करते रहे।

जव पृथ्वीराज के सैनिक लोग वाग में घुसने लगे तो वहाँ के रक्षकों ने इन्हें आने से रोका और मना किया कि आप लोग यहाँ न आइये। पर इन्होंने उनकी वात न मानी और जवर्दस्ती घुसकर डेरा जमाने लगे। धीरे २ वादविवाद होते होते वात वढ़ गयी और पृथ्वीराज के एक सैनिक ने वाग के माली को मार डाला। जव यह समाचार राजा परमाल देव को मालूम हुआ तो उसने उसी समय दरिदास वघेल को वुलाकर आज्ञा दे दी कि जाओ शीघ्र उन लोगों को पकड़कर मेरे सामने ले लाओ। घायल तथा सैनिकों ने हरिदास को वहुत प्रकार से समझाकर कहा कि केवल हम लोगों को रातभर रहने दीजिए। सवेरे ही हम लोग यहां से उठकर चले जायँगे। व्यर्थ झगड़ा वढ़ाने से क्या फायदा ? परन्तु उसने उनकी एक न सुनी। तव वात ही वात में वाग में पड़े हुए घायल सैनिक भी लड़ने को तय्यार हो गये। परिणाम यह हुआ कि राजा परमाल देव के दोनों सरदार हरिदास वघेल तथा रत्नसेन चंदेल पृथ्वीराज के सैनिकों द्वारा मार डाले गये। इनके मारे जाने का समाचार सुनते ही परमाल देव वड़ा ही क्रोधित हो उठा। उसने उसी समय उदल वनाफर को वुलाकर घायलों

को मार डालने की आज्ञा दे दी। इस पर उद्ल ने भी अपने राजा को बहुत तरह से समझा कर कहा कि व्यर्थ का वैर मोल न लीजिए। पृथ्वीराज का प्रताप इस समय बहुत चढ़ा बढ़ा है। वे एक बड़े ही वीर और साहसी पुरुष हैं। उनसे शत्रुता करने में कोई लाभ नहीं है। पर परमालदेव ने उनकी एक भी न सुनी। कारण राजा के सामन्त माल्हन और भोपति ने इस प्रकार राजा के कान भर दिये कि आल्हा उद्ल की बातों का राजा पर कुछ प्रभाव न पड़ा। अस्तु लाचार राजा की आज्ञा पाकर ऊदल ने बाग में जाकर घायलों का वध कर डाला। बस पृथ्वीराज से वैर का यही प्रधान कारण हुआ।

अब यहां पर ऊद्ल और उसका भाई आल्हा का कुछ परिचय दे देना आवश्यक है। राजा परमालदेव की सेना में एक दसराज (कोई २ इसे जसराज भी कहते हैं) नाम का एक बड़ा वीर बनाफर सरदार था। आल्हा ऊदल दोनों उसी के पुत्र थे। इनके पिता ने कई बार युद्ध में बड़ा पराक्रम दिखाया था। ये दोनों भाई भी बड़े वीर और पराक्रमी थे। यही कारण था कि परमालदेव इन्हें अपने पुत्र की भांति मानते थे। उनका इतना बल और दबदबा देखकर राज्य के कितने ही कर्मचारी लोग मन ही मन उनसे जला करते थे। कहते हैं कि आल्हा के पास ऐसे अच्छे २ पांच घोड़े थे कि जिनके समान उस समय और कहीं भी कोई घोड़े न थे। आल्हा के शत्रु दलों ने राजा

परमाल देव के कान भरे और कहा कि ऐसे अच्छे घोड़े तो राजाओं के पास रहने चाहिए। ये राजा ही के योग्य हैं। अस्तु राजा ने आल्हा ऊदल से कहा कि तुम ये घोड़े मुझे दे दो। इस पर आल्हा उदल ने घोड़ों के देने से इन्कार किया कहा— "महाराज! घोड़े हमारे प्राणों के साथ हैं। इन्हें हम अपने से अलग नहीं कर सकते। क्षमा करेंगे।" इस पर नाराज होकर दोनों भाइयों को राजा ने अपने राज्य से निकल जाने की आज्ञा दे दी। अतः राजा से इस प्रकार अपमानित होकर दोनों भाई महोवा राज्य से निकल गये और राजा जयचन्द के पास जाकर आश्रित हुए।

जब पृथ्वीराज ने आल्हा ऊदल के निकल जाने का हाल सुना तब उन्होंने उसी समय महोवा पर आक्रमण कर दिया इनकी सेना और सामन्तगण वहाँ की प्रजा को लूटने लगे। इस प्रकार नाना प्रकार के उत्पात करती हुई जब पृथ्वीराज की सेना सिरसवा के निकट पहुंची तब वहां का हाकिम मलखानने पृथ्वीराज का सामना किया। दोनों में लड़ाई होने लगी उसी समय कन्ह और मलखान का सामना हो गया वीर प्रवर कन्ह की एक तलवार के वार से दो टुकड़े होकर मलखान यमपुरी सिधार गया। चण्डमुण्डिर भी इस युद्ध में विशेष आहत हुआ। अन्त में मलखान की सेना पराजित होकर भाग गयी।

जब यह समाचार परमाल देव को मालूम हुआ तो वे बड़े

ही घबड़ा उठे। अतः वे इस बात का चिन्ता करने लगे कि अब कौन ऐसा वीर है जो पृथ्वीराज का सामना कर सकेगा। इसी समय उन्हें वीर श्रेष्ठ आल्हा ऊदल का स्मरण हो आया ऐसे संकट के समय दोनों भाइयों का न रहना उन्हें और भी अखरने लगा। अन्त में रानी के परामर्शानुसार उन्होंने यही निश्चय कर लिया कि किसी प्रकार आल्हा ऊदल को यहां बुलवा ही लेना चाहिए। उन दोनों वीर भाइयों के बिना इस उपस्थित संकट से उद्धार पाना कठिन काम है।

अस्तु उसी समय जगनक नाम को एक दूत परमालदेव का पत्र लेकर कन्नौज की ओर चल पड़ा। उसने कन्नौज जाकर दोनों भाइयों से भेंट की और बहुत तरह से समझा बुझाकर चलने के लिये उनसे प्रार्थना की। बहुत देर तक जगनक और दोनों भाइयों में वाद विवाद भी होता रहा अन्त में जब किसी प्रकार भी दोनों चलने के लिये राजी न हुए तब परमाल देव की रानी मल्हन देवी की ओर से आल्हा उदल की माता देवल देवी को उसने बहुत कुछ प्रार्थना करते हुये कहा कि रानी मल्हन देवी ने आपको सादर बुलाया है आप महोवा शीघ्र चलने की कृपा करें। तब देवल देवीने अपने दोनों पुत्रों को बहुत प्रकार से समझाकर महोवा चलने के लिए कहा। किन्तु तब भी आल्हा ऊदल जाने को प्रस्तुत न हुए। तब वह बड़े ही दुखित स्वर में बोली—
"हे ईश्वर ऐसे देशद्रोही कपूत पुत्रों को देने के बदल

मुझे बांझ ही रखता तो अच्छा था। क्यों व्यर्थ तूने ऐसे क्षात्रधर्म से पराङ्मुख कुपूतों को मेरी कोख में जन्म दिया? धिक्कार है उस क्षत्रिय पुत्र को जो अपने अन्नदाता पालनकर्ता के दुःख के समय काम न आवे और चुपचाप बैठा रहे। सच्चे राजपूत वास्तव में वही हैं जो युद्ध का नाम सुनते ही उनका हृदय आनन्द से नाच उठे। परन्तु धिक्कार है तुम दोनों कुलांगारों ने वंश के नाम पर पानी फेर दिया।

अपनी माता के मुख से ऐसे तीर के समान चुभते हुए बचन सुनकर दोनों वीर पुत्रों के हृदय में वीरता और क्षात्र-जोश एकबारगी ही लहर मार उठा। अतः उसी समय दोनों भाई माता के संग महोवा चलने के लिये तय्यार हो गये इसके बाद दोनों ने जयचन्द के पास जाकर महोवा जाने के लिये विदा माँगी पहिले तो जयचांद ने विदा देना न चाहा, पर फिर कुछ सोचकर पृथ्वीराज की अनिष्ट कामना से उत्तेजित हो उसने सहर्ष जाने की आज्ञा दे दी। साथ ही एक विशाल सैन्यदल भी उनके साथ कर दिया। इस प्रकार एक बड़ी भारी सेना के साथ आल्हा ऊदल ने महोवा में प्रवेश किया। राजा परमाल देव उन्हें देखकर बड़े हर्षित हुए और बड़े आदर से उन्होंने उनका स्वागत किया।

आल्हा ऊदल के महोवा पहुँचते ही पृथ्वीराज से भीषण युद्ध आरंभ हो गया। इस समय परमालदेव और जयचन्द की भेजी सेना दोनों मिलकर लगभग एक लाख के ऊपर

होगई थी। अतः इस सम्मिलित सेना के साथ आल्हा ऊदल अपने मालिक की ओर से पृथ्वीराज से युद्ध करने के लिये अग्रसर हुए।

इस प्रकार चंदेलों की विशाल सेना को आगे बढ़ते देख कर पृथ्वीराज ने अपनी सेना को चार भागों में विभक्त किया। नरनाह कन्ह समस्त चौहान सेना का सेनापति नियुक्त हुआ चन्डमुण्डिर, निड्डुरराय, लखनसिंह, बघेल, कनकराय, सारंगराय आदि सामन्त कन्ह की सहायता को नियुक्त हुए। खूब युद्ध मचा। वीरों ने अपना-अपना रणकौशल दिखाया। यद्यपि चन्देलों की सेना एक लाख थी तथापि पृथ्वीराज की ऐसी धाक जमी हुई थी कि वे सभी मन में घबड़ा रहे थे।

कन्ह की आँखों की पट्टी खोल दी गई। वह सिंह के समान गर्जता हुआ शत्रु दलों पर टूट पड़ा। ऐसा घोर युद्ध हुआ कि अपना पराया किसी की पहचान न रही। उधर राजा परमाल देव युद्ध का निपटेरा होने के पहले ही अपनी दस हजार सेना के साथ कालिंजर के किले में जाकर छिपगये। परन्तु वीर बांकुरे आल्हा ऊदल अपने स्थान से न हटे। जिधर झपट पड़ते थे, उधर ही समाप्ति कर डालते थे। इस प्रकार बड़ी मारकाट होने के बादभी पहले दिन के युद्ध में विजय चौहान सेना ही के जिम्मे रही। यद्यपि परमालदेव युद्ध से भाग कर कालिंजर के किले में जा छिपे थे तथापि उनका पुत्र ब्रह्माजीत बराबर युद्धक्षेत्र में डटा रहा बराबर

सेना को उत्साह के साथ परिचालित कर रहा था।

जब प्रथम दिन के युद्ध में विजय लक्ष्मी पृथ्वीराज की सेना को प्राप्त हुई और अपनी ओर के हजारों शूर वीर मारे गये तब आल्हा ने ब्रह्माजीत को भी किले में आजाने के लिये कहा। किन्तु वीर ब्रह्माजीत ने उत्तर दिया—"नहीं, यह काम कायरों का है, क्षत्रिय कभी रण से मुंह नहीं छिपाते इसलिये हम आप लोगोंको छोड़कर नहीं जा सकते।

दूसरे दिन फिर जोर शोर से युद्ध आरंभ हुआ। आज ऊदल ही पहले बीस हजार सेना लेकर रणक्षेत्र में आ डटा आज के युद्ध में ऊदल ने वह अद्भुत पराक्रम दिखाया कि चौहान वीर भी उसकी वीरता को मान गये। उसकी रणकुशलता और साहस देखकर शत्रु लोग भी मुक्तकंठ से उनकी प्रशंसा करने लगे। ऊदल और कन्ह बहुत देर तक पैतरा बदल २ कर लड़ते रहे। दोनों की युद्धचातुरी प्रशंसनीय थी। किन्तु अन्त में कन्ह ने उछल कर एक ऐसा हाथ मारा कि ऊदल का सिर कट कर दूर जा गिरा।

ऊदल के मरते ही सेना में हाहाकार मच गया। ऊदल की मृत्यु का समाचार सुन आल्हा और ब्रह्माजीत के क्रोध का पारावार न रहा। दोनों एक साथ ही क्रुद्ध सिंह की भाँति पृथ्वीराज की सेना पर टूट पड़े। सामने ही कैमास को देख दोनों ने उसे ललकारा। बड़ी भयंकर काटमार मची। इस अवसर पर आल्हा और ब्रह्माजीत अपने २ जीवन की आशात्याग-

कर शत्रु सेना से लड़ रहे थे। इसी समय सहसा पृथ्वीराजको हाथीपर सवार आल्हा ने देखलिया उसने उसी समय अपने सिपाहियों को साथ, लेकर उन्हें घेर लिया। आल्हा की भयंकर मूर्ति देख कन्ह झट उसके सामने आया परन्तु आल्हा के वार को संभाल न सकने के कारण कन्ह अचेत होकर भूमिपर गिर पड़ा। कन्ह का इस प्रकार गिरते देख कैमास आगे बढ़ आया। किंतु वह भी आल्हा के प्रवल आक्रमणके सामने ठहर न सका। शीघ्रही उसके हाथ से आहत हो अचेत भूमिपर लुढ़क गया। इसी प्रकार आल्हा ने वहुत देर तक युद्ध कर शत्रु दल में हाहा कार मचा दिया। किन्तु अन्त में पृथ्वीराजा के हाथ से ब्रह्माजीत मार डाला गया। उसके मरतेही चन्देली सेना घवड़ा कर इधर उधर भागने लगी। आल्हा ने जव यह देखा कि किसी प्रकार भी सेना की रक्षा करना असंभव है और विजयलक्ष्मी पृथ्वी-राजही के गले विजयमाल डालना चाहती है तव युद्ध से विरत होकर उसी समय वन में तपस्या करने चला गया। कहते हैं आल्हा अभी तक जीवित है। वह कभी कभी ओर्छा के वन में दिखाई पड़ता है। साथही वहां जंगल के एक पहाड़ में जो देवी का मन्दिर हैं उसमें रात के समय दीपक का प्रकाश दिखाई पड़ता है।

इधर आल्हा के जातेही चामुण्डराय पाँच हजार सैनिकों के साथ कालिंजर के किले की ओर अग्रसर होचुका था। उसने पहुंचतेही इस वीरता से किले पर आक्रमण कियाकि

परमालदेव किले की रक्षा किसी प्रकार भी न करसके। अतः शीघ्रही कालिंजरके दुर्ग पर उसने अपना अधिकार जमालिया। इस प्रकार महोवा और कालिंजर दोनों ही स्थान पृथ्वीराज के अधिकार में होगये।

नोट—इस युद्ध के संबंध में इम्पीरियल Imperial Gazetter Vol. II. गाजेटीयर खण्ड दूसरा क्या कहता है सुन लीजिये—

1. His second great exploit was the, overthrow of Parmal the chandel King of Mahoba and Kalinger (A. D. 1182). But the interest of the war rests no somuch with the Prithwiraj as with his apparents, the Banaphar Rajputs Alah and Udal.

2. The two Banafar warriors of the Chandel Rajas Alah and Udal are popular heroes their fifty two battles are celebrated in Songs. Alah is still supposed to live in the forests of orcha and nightly to kindle the lamp in a temple of Devi on a hill in the forest.

सत्रहवाँ परिच्छेद।

पृथ्वीराज के हाथ से कैमास की मृत्यु।

जब समय विनाश का आता है तो मनुष्य की बुद्धि विपरीत हो जाती है। विपत्ति आनेके पहले ही उसकी सूचना किसी न किसी रूपमें अवश्य मिल जाती है और उसके सामान भी कुछ ऐसे ही पहले से होने लग जाते हैं। रासों में वर्णित है कि चामुण्डराय की वहिन की गर्भ से उत्पन्न रेणुसिंह नाम का एक पुत्र पृथ्वीराज को था। संयोगवश दोनों मामा भांजे अर्थात् चामुण्डराय तथा रेणुसिंह में कुछ ऐसा विशेष प्रेम होगया था कि दोनोंही एक दूसरे को बड़े ही प्रेम की दृष्टि से देखते थे। दोनों में बड़ी ही घनिष्टता हो आयी थी। किंतु उनका यह प्रेमभाव बहुतों की आंखों में शूल पैदा कर रहा था। वे लोग मन ही मन चामुण्डराय से जला करते थे। अस्तु एक दिन सुयोग पाकर चंडमुंडीर ने पृथ्वीराज के कान भरे और सारी बातें कह कर अन्त ये यह भी कह डाला कि मुझे रंग कुरंग मालूम होता है। अवश्य इस प्रेमभाव के भीतर कुछ रहस्य छिपा हुआ है। मुझे तो लक्षण से ऐसा मालूम होता है कि आपके पुत्र को अपने वश में करके चामुण्डराय दिल्ली की गद्दी हड़प लेना चाहता है। उस समय

तो पृथ्वीराज कुछ न बोले। पर यह बात सदा उनके मन में कांटे की तरह चुभती रही। इसके बाद एक दिन संयोग वश ऐसा हुआ कि पृथ्वीराज का हाथी खुल गया और वह कितने ही मनुष्यों का प्राण हनन करता हुआ इधर उधर घूमने लगा। एकाएक एक गली में जाते हुए उस हाथी से चामुण्डराय की मुठभेड़ होगयी। चामुण्डराय को देखते ही वह उसपर टूट पड़ा। चामुण्डराय को भागने का कोई भी मार्ग न मिला, लाचार आत्म-रक्षा करना मनुष्यों का धर्म है। अतः उसने तलवार का एक ऐसा हाथ मारा कि सूंड कट जाने के कारण हाथी वहीं भहरा कर गिर पड़ा और प्राणरहित होगया।

अस्तु अब इस घटना से पृथ्वीराज की क्रोधाग्नि में और भी घृताहुति पड़ी। एक तो यों ही पृथ्वीराज का कान भर कर लोगों ने उन्हें चामुण्डराय के विरुद्ध उभाड़ रखा था, दूसरे अपने प्यारे हाथी के मारे जाने का हाल सुनकर वे एकदम से ही क्रोध से अधीर हो उठे। अतः उन्होंने उसी समय चामुण्ड राय को पकड़ लाने की आज्ञा देकर गुरुराम और वीखर लोहाना अजानुवाहु को रवाना किया। बिजुली की तरह यह समाचार चामुण्डराय के पास पहुँचने में देर न लगी। राजा की ऐसी अन्यायी आज्ञा सुनकर उसके सारे इष्ट मित्रगण बिगड़ खड़े हुए और सब के सब युद्ध करने को प्रस्तुत होगये किन्तु प्रभुपरायण सच्चे स्वामिभक्त चामुण्डराय ने सबों को

समझा बुझा कर शान्त किया। इसके बाद स्वयं अपने हाथ से पैरों में बेड़ी डालकर राजाज्ञा शिरोधार्य की।

बस पाठक ! पृथ्वीराज के भाग्य के सूर्य ने यहीं से अस्त होना आरंभ कर दिया। उनके अधःपतन की नींव यहीं से पड़ती है। अस्तु चामुण्डराय को कैद करके पृथ्वीराज शिकार खेलने चले गये, इस समय दिल्ली का शासन भार कैमास के ऊपर पृथ्वीराज ने दे रखा था। कारण कैमास बड़ा ही चतुर, बुद्धिमान और राजनीतिं विशारद था।

वर्षाकाल का समय था, एक दिन आकाश में खूब घटा छायी हुई थी। ऐसे ही समय एकाएक किसी कार्यवश कैमास कुछ सिपाहियों के साथ राजमहल की ओर जा निकला। संयोग से राज महल की खिड़की पर उस समय कर्नाटकी सोरहो श्रृंगार किये बैठी हुई वर्षा वहार देख रही थी। एका एक उसकी दृष्टि कैमास पर जा पड़ी। कैमास ने भी उसे-देख लिया। दोनों की चार आँखें होते ही प्रेम का बाण दोनों के हृदय में जा लगा। अतः एक दूसरे से मिलने के लिये आतुर हो उठे।

कर्नाटकी वेश्या की पुत्री तो थी ही, इस कारण ऐसे सुंदर नौजवान वीर पुरुष को एकान्त में, ऐसे समय जब कि स्वभावतः वह कामबाण से पीड़ित हो रही हो, देखकर उसपर अनुरक्त हो जाना कोई आश्चर्य की बात न थी। फिर उससमय पृथ्वीराज भी वहां उपस्थित न थे। अस्तु वर्षा विरहिणी

कामातुर कर्नाटकी कैमास पर मुग्ध हो गई। किन्तु ऐसे बुद्धिमान, चतुर प्रभुभक्त होकर भी किस प्रकार ऐसे जघन्य पाप कर्म करने को कैमास उतारू हुआ, इसका कुछ भी पता नहीं लगता। अस्तु जो हो, किसी उपाय से रात के समय कैमास कर्नाटकी के पास महल में जा पहुंचा। दोनों प्रेमियों ने एक दूसरे से मिलकर दिल की तपन बुझाई। किन्तु ऐसे ही समय सहसा रानी इच्छनकुमारी के मन में कुछ संदेह सा हो आया। अतः उसने चुपचाप इस बात का पता लगाकर जान लिया कि दोनों में अनुचित सम्बन्ध है।

बस अब क्या था, इच्छनकुमारी ने उसी समय यह समाचार अपनी एक दासी द्वारा पृथ्वीराज के पास भेजा। कारण इच्छनकुमारी स्वभावतः कर्नाटकी से जला करती थी। फिर सौत का सौत से डाह करना यह स्त्रियों का स्वाभाविक गुण है। सौत तो और भी थीं, पर यह एक वेश्यापुत्री को पृथ्वीराज ने एकदम लाकर महल में अलग रखा था। अस्तु दासी के मुँह से ऐसी बातें सुनकर पृथ्वीराज उसी समय रातोरात अपने महल में चुपचाप लौट आये। उन्होंने अपनी आँखों कर्नाटकी और कैमास को एक साथ पलंग पर सोते हुए देख लिया। मारे क्रोध से पृथ्वीराज अधीर हो उठे। अतः धनुष में शरसंधान कर उसी समय कैमास पर छोड़ा। कैमास उसी समय वहीं उस बाण की कराल चोट से प्राण रहित हो मृत्यु को प्राप्त होगया। इसके बाद अपने हाथ से भूमि खोदकर

मारे क्रोध से पृथ्वीराज अधीर हो उठे। अत: धनुष में शरसंधान कर उसी समय कैमास पर छोड़ा।

पृथ्वीराज ने कैमास की सब देह वहीं पर गाड़ दी। कर्नाटकी भी कैद कर ली गयी। किन्तु न मालूम किस चतुराई से अपने को उसने कैद से छुड़ा कर बचा लिया और भागकर सीधी वह जयचंद के पास पहुँच गयी।

इस प्रकार चुपचाप कैमास को मारकर पृथ्वीराज फिर उसी स्थान पर पहुँच गये, जहाँ वह शिकार के लिये डेरा डाले हुए थे। कैमास मार डाला गया, यह बात कोई भी जान न सका। इसके दूसरे ही दिन पृथ्वीराज शिकार से लौट आये। यद्यपि कैमासवध का जघन्य कार्य पृथ्वीराज ने बहुत ही गुप्त रीति से किया था तथापि कविचद इस बात को किसी न किसी प्रकार जान ही गया।

अब इधर दरबार में लोग कैमास की खोज करने लगे। चारों तरफ उसकी ढुँढ़ाई होने लगी। लोग बड़े ही आश्चर्यान्वित होकर इसकी चर्चा करने लगे, कि आखिर एकाएक इस प्रकार कैमास कहाँ अदृश्य हो गया? धीरे २ उसके बिना अन्य सामन्त लोग बड़े ही चिन्ताकुल हो उठे। अस्तु एकदिन राजसभा में सबों के सामने ही पृथ्वीराज ने अनजान बनकर चंद कवि से पूछा कि, "कहो, राजमंत्री कैमास कहाँ चले गये, तुम कुछ उनका हाल बता सकते हो?" इस पर चंदकवि ने इशारे से पृथ्वीराज को मना किया कि आप मुझ से यह बात न पूछिये। किन्तु उन्होंने न माना, फिर भी दुबारा इससे यही प्रश्न किया। अतः पृथ्वीराज का ऐसा हठ देखकर कविचंद

ने लाचार सब बातें स्पष्ट कह दीं। तब तो पृथ्वीराज को भी सारी बातें स्वीकार कर लेनी पड़ी। इस बात से उस दिन सभा में बड़ी हलचल मची। एक सामान्य वेश्या के कारण इतने बड़े वीर राज्य के स्तंभ स्वरूप कैंभास का मारा जाना सुनकर सब के सब बड़े ही दुखित हुए। और सारे सामन्तगण सभा से उठ-उठ कर अपने २ घर चले गये। क्षण भर में शोक समाचार नगर भर में फैल गया, घर २ लोग कैभास के लिये शोक मनाने लगे। समूचा नगर शोक का आगार बन गया। कैंभास की स्त्री तो अपने स्वामी को मृत्यु सुनते ही पछाड़ खाकर गिर पड़ी। वह अपनी कातर क्रन्दन ध्वनि से आकाश पाताल एक करने लगी। अन्त में अनेक प्रकार से प्रार्थना करके चांद ने पृथ्वीराज से उनके पति की लाश दिलवा दी। कैंभास को मार डालने के कारण पृथ्वीराज का बड़ा अपमान हुआ। उन्हें भी अब अपनी भूल सूझ पड़ी। और रात दिन पश्चात्ताप की आग से भीतर ही भीतर दग्ध होने लगे।

इस प्रकार कुछ समय तक पृथ्वीराज कैंभास के लिये पश्चात्ताप करते रहे। इसके बाद कविचांद ने नाना प्रकार से समझा बुझाकर उन्हें कुछ शान्त किया। तब एक दिन चांद ने कैंभास के पुत्र नरसिंह को उनके पास लाकर खड़ा कर दिया। कैभास के पुत्र को देखते ही बड़े प्रेम से उसे छाती से लगाकर उसके मस्तक पर पृथ्वीराज ने हाथ रखा। इसके बाद बहुत सा धन द्रव्यों से पुरस्कृत करके हांसीपुर का

परगना भी उसी समय उसके नाम लिख दिया। किन्तु इतना करने पर भी प्रजा संतुष्ट न हुई। रासो के देखने से मालूम होता है कि कैमास की मृत्यु के कारण दिल्ली में बड़ी भारी हड़ताल मच गयी थी। अन्त में एक दिन खुले दरबार में अपना दोष स्वीकार कर अपने मुंह से पृथ्वीराज को कैमास संबंधी सारी घटनायें कहनी पड़ी। इसके बाद अपनी भूल स्वीकार करते हुए उन्होंने सबों के सामने पश्चात्ताप किया और कहा कि उस समय ईर्ष्या के वशीभूत हो जाने के कारण मैं क्रोध में एकदम अंधा हो गया था। विवेकबुद्धि से मैं रहित हो गया था। उनके इस प्रकार कहने पर अन्त में सब सामन्तों ने उन्हें क्षमा कर दिया। हड़ताल बन्द हो गयी, और राज्य का काम फिर पूर्व की भांति चलने लगा।

—०**०—

* अठारहवाँ परिच्छेद *

थानेश्वर में शहाबुद्दीन से पुनः मुठभेड़।

सर्व साधारण लोग इस युद्ध को। "थानेश्वर या तिरोरी" के युद्ध के नाम से जानते हैं। किन्तु प्राचीन लेखक लोग इस युद्ध को भष्म तरायन बताते हैं। अस्तु जो हो।

"घर का भेदिया लका डाहे" यह बहुत सत्य बात है। घर का शत्रु बड़ा ही हानिकारक होता है। धर्मायन के सम्बंध में पाठक पहले ही बहुत कुछ जान गये हैं कि वह किस प्रकार अपनी विश्वासघातकता का परिचय देते हुए बराबर दिल्ली का गुप्त समाचार शहाबुद्दीन को लिख भेजता था। अस्तु, पृथ्वी राज एक बार पानीपत के पास किसी एक जंगल में शिकार खेल रहे थे कि उसी समय उन्हें अपने दूतों द्वारा यह खबर लगी कि शहाबुद्दीन ने फिर भारत पर चढ़ाई कर दी है। वह बहुत शीघ्र एक विशाल सैन्यदल के साथ यहां आया चाहता है। इतना सुनते ही अपने सामन्तों को बुलाकर वे इस विषय में उनसे सलाह पूछने लगे। इसके बाद कार्यक्रम निर्धारित होगया। और उसी समय तुरन्त चित्तौड़ समाचार भेजकर रावल समरसिंह को इसकी सूचना दी गयी। अतः अभी

शहाबुद्दीन आने भी नहीं पाया था कि इतने ही समय में पृथ्वीराज ने भी अपनी सेना यथेष्ट संख्या में एकत्र कर ली। इस बार के युद्ध में सामन्त वीरवर गोविन्दराय भी पृथ्वीराज की सेना में आकर सम्मिलित हुए। अबकी बार शहाबुद्दीन बहुत बड़ी टिड्डी दल सेना लेकर चढ़ आया था। कारण वह कई बार पृथ्वीराज से बुरी तरह हार खाकर बंदी हो चुका था। अस्तु वह बड़ी ही तेजी से बढ़ता हुआ उस स्थान पर आ पहुँचा जहां पृथ्वीराज शिकार के लिये अपना पड़ाव डाले हुए थे। इधर पृथ्वीराज भी पहले से तैयार ही थे। उसके आते ही दोनों दलों में भिड़न्त होगई। सेना में रण वाद्य बज उठा। सारे शूर वीर योद्धा रणसज्जा से सज्जित हो युद्धभूमि पर आडटे। रासो के कथनानुसार इस बार पृथ्वीराज ने बीस हज़ार सेना लेकर शहाबुद्दीन का सामना किया था। नरनाह कन्ह, गोयन्दराय, जैतसिंह, रामराय बडगूजर आदि सामन्त रणवेश से सुसज्जित होकर युद्ध के लिये चल पड़े। सवेरा होते न होते दोनों ओर के वीर सैनिक रणोन्मत्त हो युद्ध भूमि में आ पहुंचे और इस प्रकार एक दूसरे से जूझ पड़े कि अपना पराया की पहचान किसी को न रही इसी प्रकार युद्ध होते२एकाएक दो यवन सरदार राजपूत सेना को मारते काटते पृथ्वीराजके पास आ पहुँचे और आते ही झपट कर उनपर तलवार का वार कर बैठे। किन्तु वीर पृथ्वीराज ने इस बहादुरी और चतुराई से उनका सामना किया कि क्षण

भर के बाद ही दोनों यवन यमपुरी सिधार गये। राजपूत सेना की भीषण मार से धीरे २ यवन सेना के पैर पीछे पड़ने लगे। यह देख शहाबुद्दीन ने स्वयं आगे बढ़कर अपनी सेना को ललकारा। इस प्रकार अपने स्वामी को स्वयं आगे बढ़ते देख पुनः सेना रुक गयी और जी तोड़कर लड़ने लगी।

परंतु इस बार भी राजपूतों के वार को यवन सेना सँभाल न सकी। केवल बीस हजार राजपूत सेनाने मुसलमानी सेना पर इस वेग से आक्रमण किया कि यवन सेना तितर बितर होकर भाग खड़ी हुई। लाचार अब शहाबुद्दीन गोरी को भी भागने के अतिरिक्त और कोई उपाय न रहा।

अस्तु वह ज्योंही भागने के लिये हाथी पर से उतर कर घोड़े पर सवार हो रहा था कि झपट कर पहाड़राय तोमर उसके पास पहुँच गये। लोहाना अजानबाहु आदि और भी कई सामन्त भी उनके साथ थे। अपने मालिक को इस प्रकार शत्रुओं से घिरा हुआ देखकर यवन सेना के भी कितने ही वीर सरदार और सैनिक अपने स्वामी की रक्षा के लिये आगे बढ़े। अबकी बार इस स्थान पर बड़ा ही भीषण युद्ध हुआ। लोहाना अजानबाहु ने एक ऐसा हाथ मारा कि शहाबुद्दीन का हाथी लुण्डमुण्ड हो गिर पड़ा। इसी समय पहाड़राय ने अपना घोड़ा आगे बढ़ा कर शहाबुद्दीन के हाथी से भिड़ा दिया। और शहाबुद्दीन को हाथी पर से खींच लिया। अब क्या था अपने मालिक को इस प्रकार दुरावस्था में पड़ते देख यवन सेना

भयभीत हो भाग खड़ी हुई। और शहाबुद्दीन पुनः बन्दी बना कर दिल्ली लाया गया। अस्तु इस बार भी विचारे शहाबुद्दीन का कुछ बस न चल सका। और अपनी अगणित सेना कटवा कर इस बार भी उसे पृथ्वीराज के हाथ कैद हो जाना पड़ा।

वास्तव में इस बार मुसलमान लोग बड़ी ही बुरी तरह पराजित हुए। उनपर ऐसी मार पड़ी कि कहीं भाग कर जान बचाने की भी उन्हें जगह न मिली। इस प्रकार वीरवर पृथ्वीराज के अखण्ड प्रताप के आगे मुसलमानों की इस बार भी दाल न गल सकी। कारण कि अभी भारत को परतन्त्र होने का समय नहीं आया था। अस्तु शहाबुद्दीन एक महीने तक पृथ्वीराज के यहाँ कैद रहा, इसके बाद बहुत सा रत्न माणिक लेकर उन्होंने उसे पुनः कैद से मुक्त कर दिया।

अब इस युद्ध के सम्बन्ध में बहुत से ऐतिहासिकों का अलग २ मत है जैसे इतिहास फिरिश्ता, तबकाते नाशिरी इत्यदि २। यदि पाठकगण इन इतिहासों को देखेंगे तो उनके भिन्न मतों का पता लग जायगा। इस पुस्तक में वर्णित की हुई पृथ्वीराज के जीवन सम्बन्धी घटना रासो ही से ली गई है। कारण रासो के अतिरिक्त और किसी भी इतिहास में पृथ्वीराज का जीवनी लिखने योग्य मसाला नहीं मिलता।

* उन्नीसवां परिच्छेद *

संयोगिता हरण।

पाठक! जयचंद को भूले न होंगे। वह बार २ इस प्रकार पृथ्वीराज को विजय प्राप्त करते देख और लोगों के मुंह से उनकी कीर्ति कथा सुन मारे ईर्षा के मन ही मन और भी जल भुन रहा था। इधर महोवा तथा कालिंजर पर पृथ्वीराज अपना अधिकार जमा चुके थे। उसे अपने अधीनस्थ करद राज्य बनाकर पुनः उन्होंने परमाल देव को सौंप दिया था। तरायन के युद्ध में भी वे विजयलक्ष्मी प्राप्त कर चुके थे। अस्तु इन सब विजय प्राप्ति के कारण दिल्ली कुछ दिन तक के लिये आनन्दोत्सव और आमोद का आगार बन गयी थी। लोग खूब आनन्द में मग्न महाराज पृथ्वीराज की जय २ कार मना रहे थे। अतः इस तरह बराबर दिल्ली में आनन्दोत्सव की धूम मची हुई देख और सुन कर वह और भी विद्वेष की आग से भड़क उठा। एक तो पृथ्वीराज पहले ही से जयचन्द की आंखों में कांटे के समान चुभ रहे थे। दूसरे संयोगिता ने उसका जो अपमान किया था उससे जयचन्द का शिर और भी नीचे झुक गया था। जिस पृथ्वीराज ने उसके

जन्मसिद्ध हक को छीन कर जबर्दस्ती उसपर अपनी अधिकार जमाया, जिसके द्वारा बार २ अपमानित होकर युद्ध में उसे पराजित होना पड़ा था, जिसके कारण उसके राजसूययज्ञ में बाधा आ पड़ी थी, जो उसके भाई का मारने वाला, पद २ पर उसे अपमान की ठोकर से पददलित करने वाला था। जिसका अपमान करने के लिए अपने राजसूययज्ञ में उसने उसकी स्वर्ण प्रतिमा बनवा कर दरवाजे पर रखवा दी थी, अहा! उसी अपने पिता के चिरशत्रु, उद्दण्ड, घमण्डी, पृथ्वी राज की स्वर्ण प्रतिमा के कण्ठ में जयमाल डालकर संयोगिता ने अपनी उद्दण्डता की जो पराकाष्ठा कर दी थी, उसके चिर-शत्रु को वरण कर उसका उसने जो अपमान किया था उसे क्या जयचन्द कभी भूल जा सकता था? कदापि नहीं। अस्तु उस अपमान की आग से वह भीतर ही भीतर जलकर तड़प रहा था, किन्तु लाचार समय के विपरीत होने के कारण वह कुछ भी कर न सकता था।

यद्यपि जयचन्द भी कोई साधारण राजा न था उस समय वह एक बलवान राजाओं में गिना जाता था, उसका सैन्य-दल भी अथाह था। पर पृथ्वीराज की वीरता और प्रताप की एक ऐसी धाक जमी हुई थी कि उनके आगे उसकी कुछ भी दाल गलने नहीं पाती थी। अस्तु रासो में इस घटना का इस प्रकार वर्णन किया गया है कि जब बहुत कुछ समझाने पर भी जयचन्द के राजसूय यज्ञ में पृथ्वीराज न आये और उसके

भाई चालुक्याराय को मार कर यज्ञ विध्वंस कर दिया तो उस समय वहाँ बहुत से देश विदेश के नृपतियों के उपस्थित रहने के कारण संयोगिता का स्वयंबर उसने कर दिया यद्यपि बहुत तरह से कई बार अन्यान्य राजाओं का अशेष गुणकीर्तन उस समय किया गया और एक बार भी पृथ्वीराज का नाम नहीं लिया गया तथापि संयोगिता उनकी अद्भुत वीरता की प्रशंसा लोगों के मुंह से सुनकर उन्हें अपना हृदय पहले ही से अर्पण कर चुकी थी। इस कारण पृथ्वीराज के वहां न रहने पर भी उनकी स्वर्णप्रतिमा के गले में ही वरमाल पहिनाकर सुन्दरी संयोगिता ने उन्हें वरण कर लिया। उसकी इस ढिठाई से जयचन्द इतना क्रोधित हुआ कि उसने उसी समय संयोगिता को गंगा किनारे एक महल में कैद कर दिया।

बिचारी संयोगिता महल में कैद होकर पृथ्वीराज के नाम की माला जपने लगी। उसने अपनी सखी की सहायता से एक ब्राह्मण द्वारा यह समाचार पृथ्वीराज के पास भेजवा दिया। पृथ्वीराज को जब यह मालूम हुआ कि जयचन्द ने उनका इस प्रकार अपमान कर डाला है और वह उसको कुछ भी दण्ड देकर इस अपमान का बदला नहीं चुका सके तो यह बात उनके हृदय में शूल की तरह चुभ २ कर उन्हें अधिक वेदना देने लगी। बस अब रातदिन उनकी आँखों में जयचन्द एक कांटे सा खटकने लगा। अन्त में एक दिन उन्होंने अपनी

आन्तरिक इच्छा प्रकट करते हुए राठौर राजधानी कन्नौज में अपने साथ ले चलने के लिये कविचंद से विशेष आग्रह किया।

इसपर कविचन्द ने बहुत तरह से समझा कर कहा कि आप इस हठ को त्यागिए, वहां आपका जाना किसी प्रकार भी उचित नहीं है। आप जयचंद के बल विक्रम को अच्छी तरह जानते हैं, आपसे कुछ छिपा नहीं है। आपको मालूम है कि उसकी थोड़ी सेना ने किस प्रकार आपके राज्य में हलचल मचा कर कितनी सनसनी फैला दी थी? सैकड़ों गाँव जला कर किस प्रकार उसने प्रजा को लूट कर आफत मचा दिया था? यह कोई बुद्धिमानी नहीं है कि वृथा अग्नि को जानते हुए भी उसमें हाथ डालकर अपने को कष्ट पहुंचावें। अपने आप पहाड़ से टकराने को कोई नहीं जाता। अतः आप ऐसी अनुचित इच्छा को अपने हृदय में स्थान न दीजिए।

इस प्रकार कविचन्द के समझाने पर भी पृथ्वीराज अपनी इच्छा से विरत नहीं हुए और बार बार कन्नौज जाने के लिये अपना विशेष आग्रह प्रगट करते हुए हठ करने लगे। अन्त में विवश होकर चन्दकवि को उनकी बात माननी ही पड़ी। बस इसके कुछ ही दिन बाद शुभ लग्न में अपने सामन्तों को लेकर चन्दवरदाई के साथ छद्मवेश में कन्नौज की ओर पृथ्वीराज ने प्रस्थान किया। साथ में इनके थोड़ी बहुत सेना भी गयी थी संयोग की बात देखिए कि घर से निकलते ही रास्ते में पृथ्वी-राज को बहुत से असकुन हुए। यह देखकर अन्य सामन्तों

ने भी उन्हें मना करते हुए कहा कि इस समय आपका वहाँ चलना अच्छा नहीं है। पर वहाँ कौन सुनता है। शिर पर तो उनके होनहार सवार हो रहा था। अस्तु उन लोगों के मना करने पर भी पृथ्वीराज ने न माना और बराबर आगेको बढ़ते ही चले गये।

कभी कभी होने वाली बातों का आभास ईश्वर मनुष्य को पहले ही करा देता है। भविष्य की छाया पहले ही मनुष्य को सावधान कर देती है। किंतु मनुष्य उसपर ध्यान नहीं देता, जिसका परिणाम अवश्य उसे अन्त को विषम भोगना पड़ता है। बस इसी भविष्य सूचना ही को लोग शकुन अशकुन कह कर पुकारते हैं। अस्तु भविष्य अपनी अशकुन रूपी छाया डाल कर बराबर पृथ्वीराज को सावधान करता जा रहा था, और साथ ही कई ऐसे कारण भी उपस्थित होगये थे कि जिनके द्वारा पृथ्वीराज और उनके सामन्तों को ऐसा मालूम होता था कि इस काम का भविष्यफल अच्छा न होगा किन्तु फिर भी संयोगिता के प्रेम का भूत पृथ्वीराज के शिर पर ऐसा सवार था कि भविष्य की इस पूर्व सूचना पर उन्हें कुछ भी ध्यान देने नहीं देता था। इसी से कहते हैं—होतव्यता बड़ी प्रबल होती है। किन्तु सब सामन्त गण इस बात को भलीभांति समझ रहे थे कि इसका क्या परिणाम होगा। आने वाले संकटों की भविष्य सूचना उनके हृदय-पट पर बराबर अपनी छाया डाल रही थी। और उन्हें ऐसा जान पड़ता

था-कि शायद हो इस यात्रा से उन्हें सकुशल,लौटने का भाग्य में बदा हो ?

अस्तु जो हो, होनहार की प्रेरणा से संताडित हो किसी प्रकार चन्द वरदाई के साथ कन्नोज में पृथ्वीराज ने पदार्पण किया। छद्मवेश में तो वे थे ही, उसी गुप्त वेश में पहले जाते ही उन्होंने समूचा कन्नौज शहर परिभ्रमण कर देख लिया। इसके बाद फिर जयचन्द की वह दस हजार अजेय सेना देखी जो उसके राज्य का स्तम्भ स्वरूप काल को भी एक बार युद्ध में परास्त करने वाली थी। वीर होने पर भी पृथ्वीराज का हृदय उसे देख कर एक बार दहल उठा। किन्तु अब उपाय ही क्या हो सकता था ? जिस काम के लिये घर से निकले थे उसे पूर्ण कर डालना ही कर्तव्य था।

इसी प्रकार नगर परिदर्शन करते हुए पृथ्वीराज कविचांद के साथ जयचन्द के दरबार के प्रधान फाटक पर जा पहुँचे। कविचन्द के आने की सूचना द्वारपालों ने उसी समय जाकर जयचन्द को दी। लोगों के मुँह से यद्यपि जयचन्द चन्दकवि की प्रशंसा बहुत कुछ सुन चुका था, तथापि अपने कवि को भेज कर उसने चन्द की भलीभांति परीक्षा कराई। इसके बाद उसने फिर उसे अपनी राजसभा में सादर लाने की आज्ञा दे दी। चन्दकवि पृथ्वीराज को साथ लिये राजा जयचन्द की राजसभा में जा उपस्थित हुआ। जयचन्द ने उससे कितनी ही बातें पूछीं, कविचन्द ने उन सबों का ठीक ठीक उत्तर देते

हुए उसकी प्रशंसा में ऐसी २ कविताएं कह सुनायीं कि सभा के लोग चकित होगये, जयचन्द भी बड़ा प्रसन्न हुआ।

इसके पश्चात् और भी कुछ कहने के उपरान्त कविचन्द ने ओजस्विनी कविता में अपने मालिक पृथ्वीराज की भी प्रशंसा करते हुए स्वामि-भक्ति का ऐसा अच्छा परिचय दिया कि, सुनने वाले दंग रह गये। उसने कहाः—

"जहाँ वंश छत्तीस आवे हंकोर।
तहाँ एक चहुआन पृथ्वीराज टारे॥"

बस कवि के इस अन्तिमपद ने ग़ज़ब ढा दिया। यह पद जयचन्द के हृदय में विषाक्त बाण सा जा लगा। उसका समस्त शरीर क्रोध से काँप उठा। आंखें लाल हो आयीं। और वह उस समय इतना उत्तेजित हो उठा था कि मालूम होता था, कि यह यदि पृथ्वीराज को पाता तो शायद कच्चा ही चबा जाता। उसने एक ठंडी सांस ली, इसके बाद मुट्ठी बाँध कर दांत पीसते हुए छाती पर हाथ रखा और कविचंद बरदाई की ओर देखकर कहा—"यदि पृथ्वीराज मेरे सामने आये तो बताऊँ।"

जयचन्द के मुंह से इस प्रकार के वचन सुनते ही पृथ्वीराज भी क्रोध से अधीर हो उठे। उनके नेत्र लाल २ हो गये। तेवरी बदल गयी। भौंह में बल पड़ गया। कारण कि पृथ्वीराज तो सेवक के वेश में चंद बरदाई के पीछे खड़े ही थे। अतः उनकी ऐसी भयंकर मूर्ति देख जयचंद के मनमें कुछ शंका हो आयी कि कदाचित कहीं पृथ्वीराज भी तो चंद के साथ नहीं है?

किन्तु फिर दूसरे ही क्षण वह मनमें विचार करने लगा कि इतना बड़ा प्रतापी वीर पुरुष पृथ्वीराज कविचन्द का सेवक बनकर मेरे यहां आवे, यह असंभव है।

इसी समय एक घटना और भी घट गयी। वहां जयचांद की कितनी ही दासियों में कर्नाटकी भी उपस्थित थी। संयोग से उन दासियों के साथ पान की थाली लेकर कर्नाटकी भी दरबार में आ पहुंची। यद्यपि पृथ्वीराज छद्मवेशमें थे तथापि, उनपर दृष्टिपड़तेही सन्नाटेमें आगई। सब के सब आशंकित हो उठे कि अवश्य यहां कविचांद के साथ किसी न किसी वेश में पृथ्वीराज उपस्थित हैं। इस प्रकार शंकित चित्त होकर सब के सब आपस में कानाफूसी करने और एक दूसरे का मुंह देखने लगे। कोई २ तो यहाँ तक कह बैठे कि इन दोनों को पकड़ लेना चाहिए। किन्तु जयचांद ने सब को इशारा करके मना कर दिया। सभा का इस प्रकार भाव परिवर्तन होते देख उसी समय कविचांद बोल उठा—

"करि बल कलह सुमंत्रो मान्यो।
नहिं चहुआन सरन्न विचार्‍यो॥
सेन सुवर काह कवि समुझाई।
अब तू कलह करन इहां आई।"

कर्नाटकी के घूँघट काढ़ने से लोगों के शंकित होने का यह कारण था कि कर्नाटकी सिवाय पृथ्वीराज के और किसी के सामने घूंघट नहीं काढ़ती थी। पहले ही से उसका यही प्रण

था। बस यही कारण था कि उसके घूंघट काढ़ते ही पृथ्वी-राज के होने के विषय में संदेह कर बैठे थे।

उपरोक्त कविता कहकर चांद ने संकेत ही से कर्नाटकी को समझा दिया कि यह काम तू बहुत ही खराब कर रही है। कवि के आशय को कर्नाटकी समझ गयी, और चट उसने घूंघट सिर से हटा लिया। जब उससे इस विषय में पूछा गया तो बोली कि कविचांद पृथ्वीराज के अभिन्न हृदय सखा हैं। अतः उनकी भी आधी लाज मुझे रखनी पड़ती है। यही कारण है कि एक बार घूंघट काढ़ कर फिर मैंने उसे उतार दिया था। अस्तु इतना कहने से उस समय तो बात दब गयी किन्तु फिर भी जयचांद के मन में इसकी शंका बनी ही रही। यद्यपि कविचांद के आतिथ्य सत्कार और आवभगत में जयचांद ने कोई भी त्रुटि नहीं होने दी और बड़े आदर से उसके रहने का सुन्दर प्रबंध करके नगर के पश्चिम भाग में एक अलग डेरा जमवा दिया, तथापि उसने अपने मनुष्यों को इस बात की आज्ञा देकर ताकीद कर रखी थी कि कविचांद के साथियों पर कड़ी दृष्टि रखी जाये। अस्तु वे लोग उसके आज्ञानुसार इस कार्य पर तत्पर हो गये, एक दिन पता लगा कर उन लोगों ने जयचांद को समाचार दिया कि कविचांद के साथ जो नौकर है, वह बड़ा ही विचित्र है। उसके ठाट बाट, रहन सहन आदि देखकर उलटे यही मालूम होता है कि कविचांद ही उसका नौकर है।

यद्यपि पृथ्वीराज वहां नौकर के वेश में गये हुए थे तथापि अपने निवासस्थान में उनका ठाट बाट सदा राजसी ही रहता था और उनसे सामन्त गणों का व्यवहार भी उनके साथ राजा ही के समान होता था। एक दिन पृथ्वीराज अपनी राजसी पोशाक में बड़े ठाट बाट के साथ ऊंचे आसन पर बैठे थे कि उसी समय जयचांद् के एक दूत ने उन्हें देख लिया। उसने उसी समय जाकर जयचन्द को यह समाचार दिया कि चांदकवि के साथ पृथ्वीराज भी अवश्य आये हुए हैं। इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।

यद्यपि जयचांद् को पहले ही से इस बात की शंका हो रही थी, तथापि दूतों के इस समाचार से उसकी वह शंका विश्वास में परिणत हो गयी। अस्तु उसने उसी समय अपने चुने हुए वीरों को तय्यार होने की आज्ञा दे दी। इसके पश्चात् राजकवि चांद को विदाई देने तथा उसका आदर सत्कार करने के बहाने बहुत सा धन रत्न, हाथी घोड़े आदि लेकर चांदकवि के निवासस्थान को ओरशीघ्रता पूर्वक चल पड़ा। उसने आदमियों को समझा कर इस बात की ताकीद कर दी थी कि खबरदार! चांदकवि के एक भी साथी भागने न पावें, सब के सब पकड़ लिये जायँ।

अस्तु जयचांद् अपने साथियों सहित, चांदकवि के डेरे पर जा पहुँचा। कुछ देर तक तो आपस में शिष्टाचार की बातें होती रहीं। इसके पश्चात् चांदकवि ने पृथ्वीराज से जयचांद्

को पान देने के लिये कहा कविचांद की आज्ञा पाकर पृथ्वीराज ने तुरन्त ही पान जयचांद के आगे ला रखा। किन्तु बायें हाथ से दहिने हाथ से नहीं। नौकर वेशधारी पृथ्वीराज की यह ढिठाई देख, जयचांद क्रोध से जल भुन गया। किन्तु ऊपर से प्रसन्नता दर्शाता हुआ ध्यान से पृथ्वीराज के मुंह की ओर देखने लगा। इसी प्रकार के और भी कई कार्य हुए, किन्तु उस समय कुछ कहना उचित न समझ जयचांद चुप हो रहा कारण कि पृथ्वीराज ने अपना वेश परिवर्तन इस प्रकार कर रखा था कि बार २ उनके मुंह की ओर देखने पर भी वह उन्हें पहचान न सका। अस्तु वह मन में यही सोचकर आगा पीछा कर रहा था कि यदि मैं ने कुछ उपद्रव किया और चांदकवि के साथ पृथ्वीराज न निकले तो बहुत ही अपमानित और लांछित होना पड़ेगा।

इसी प्रकार मन में सोचता हुआ चुपचाप बिना कुछ उपद्रव मचाये जयचांद अपने राजमहल में लौट आया और मंत्री सुमन्त से बोला—"देखो अब ऐसा उपाय करना चाहिये कि पृथ्वीराज यहाँ से जीवित बच कर जाने न पावे। जैसे हो उसे मारही डालना उचित है। उसके मर जानेसे संयो-गिता भी निराश होकर शान्त हो जायगी। साथ ही एक शत्रु से भी सदा के लिये पिण्ड छूट जायेगा।"

इस पर सुमन्त ने नाना प्रकार से समझा कर उससे कहा—आप व्यर्थ और बैर न बढ़ाइये, पृथ्वीराज जैसे प्रताप-

शाली राजा, कविचांद का नौकर बनकर आवें, यह कभी संभव नहीं है। भला उन्हें ऐसी कौन सी आवश्यकता आपड़ी है? यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है तो आप एक बार स्वयं कविचांद को बुलाकर इस विषय में पूछ लीजिए, मुझे पूर्ण विश्वास है वे कभी असत्य न बोलेंगे।

जयचांद के मन में यह बात आ गयी, उसी समय कविचांद को बुला कर उसने पूछा—"क्या पृथ्वीराज तुम्हारे साथ आये हैं?"

इसपर बड़े ही तेजपूर्ण शब्दों में पृथ्वीराज का यशगान करते हुए चांदकवि ने स्पष्ट कह दिया कि इस समय पृथ्वीराज कन्नौज ही में हैं। उनके अतिरिक्त उनकी ग्यारह सौ अजेय सेना और सामन्त जो ग्यारह लाख शूरवीरों को मार भगाने के लिये यथेष्ट हैं, उनके साथ आये हुए हैं।

बस इतना सुनते ही जयचांद की आखें खुल गयी, उसने उस समय तो कविचांद को विदा किया और आप शीघ्र सेना सुसज्जित करने की आज्ञा मंत्री को देकर महल में चला गया। आज्ञा की देर थी। बात की बात में जयचांद का भांजा सहसमल अपनी आधीनता में बहुत सी सेना लेकर पृथ्वीराज के निवासस्थान की ओर चल पड़ा।

पृथ्वीराज और उनके सामन्तों को भी यह समाचार मालूम हो गया उसी समय शीघ्रही लंगरीराय ने भी पृथ्वीराज की ओर से लड़ने के लिये, आगे पैर बढ़ाया। लड़ाई छिड़ गयी।

लंगरीराय ने बड़ी वीरता से सहसमल की सेना का सामना किया। लड़ते २ अन्त में सहसमल और लंगरीराय दोनों वीर-गति को प्राप्त हुए। इस युद्ध में जयचन्द के मंत्री सुमन्त ने भी परलोक को अपना निवास स्थान बनाया।

इस अपने प्यारे भांजे और राजमन्त्री की मृत्यु के साथ २ अपने पराजय का वृत्तान्त सुनकर जयचन्द का क्रोध एक बारगी ही अपनी सीमा से बाहर उबल पड़ा। उसी समय क्रोध और क्षोभ से उत्तेजित हो अपनी मुसलमानी और हिन्दू दोनों सेनाओं को आक्रमण करने की आज्ञा देकर स्वयं रण-सज्जा से सज्जित हो रणभूमि में जा पहुँचा।

पुनः दोनों ओर की सेनायें आपस में जूझ गयीं, भयंकर युद्ध ठन गया। इस बार चोहान सेना का सेनापतित्व पंगुराय ने ग्रहण किया। इधर पंगुराय के जिम्मे सेनापतित्व का भार सौंप कर पृथ्वीराज नगर परिदर्शन करने के लिये चल पड़े। यद्यपि सामन्तों ने अकेले जाने से पृथ्वीराज को मना किया किन्तु उन्होंने किसी की एक न सुनी। और घोड़े पर चढ़कर शीघ्र गंगा किनारे पर स्थित एक सुन्दर महल के पास जा पहुंचे। जहां बहुत सी स्त्रियाँ खिड़की से झांक २ कर युद्ध का तमाशा देख रही थीं।

उधर तो पृथ्वीराज संयोगिता की खोज में गंगा किनारे चले गये। और इधर शत्रु सेना ने आकर चन्दकवि के निवास स्थान को घेर लिया। इस प्रकार एकाएक शत्रुओं से अपने के

घिरा हुआ पाकर चौहान सेना वीररस से उन्मत्त हो उठी। जयचंद इतना प्रबंध कर लौट गया, और इधर दोनों दलों में मार काट मच गई, बड़ाही भीषण युद्ध हुआ। जयचंद की ओर के दो हजार योद्धा मारे गये। पृथ्वीराज की ओर के भी कितने वीर सामन्त युद्ध में काम आये।

उधर पृथ्वीराज घूमते फिरते अन्त में ठीक उस स्थान पर जा पहुंचे जहाँ गंगा के किनारे एक महल में संयोगिता बंदिनी की भांति रहती थी। वे उस स्थान पर पहुंच कर जल में मछलियों की जलक्रीड़ा देखने लगे। उधर सहेलियां और संयोगिता की दृष्टि भी पृथ्वीराज पर जा पड़ी। अतः वे सब भी उन्हें पहले ही से गंगा तीर पर बैठा हुआ देखने लगीं। किन्तु वे सब पृथ्वीराज को पहचानती न थीं। संयोगिता ही केवल उनका कामदेव समान रूप देखकर मनही मन उनपर मुग्ध हो रही थी। सहेलियों में जो कोई चतुरा सयानी थीं उन्होंने कुछ २ ताड़ कर संयोगिता से कहा—"सखी! वह गंगा तट पर बैठा हुआ पुरुष मुझे तो पृथ्वीराज ही से जान पड़ते हैं। कहो तो उनका परिचय पूछ लिया जाय?"

इस पर संयोगिता ने कहा—"हां सखी! हृदय तो मेरा भी ऐसा ही कह रहा है कि हो न हो वेही मेरे हृदय मंदिर के आराध्य देव हैं। क्या करूं वश नहीं चलता। मेरी तो इस समय ठीक सांप छछुन्दर जैसी दशा हो रही है कहूं तो मां मारी जाय, और न कहूं तो बाप कुत्ता खाये?"

इधर पिता माता का डर, उधर प्रियतम से मिलने की प्रबल इच्छा क्या करूं, क्या न करू कुछ समझमें नहीं आता।

रासो में लिखा है कि पृथ्वीराज के घोड़े के गले में मोतियों की माला पड़ी थी। उनमें से एक मोती टूटकर लुढ़कता हुआ उसी समय गंगाजी में जा पड़ा। मछलियाँ उसे देखते ही खाने की वस्तु समझ कर उसपर झपट पड़ी, और एक दूसरे को हटाकर उसे खाने का उद्योग करने लगी। उन लोगों की यह दशा देखकर पृथ्वीराज ने धीरे २ सब मोती गंगा में डाल दिये। इसी समय संयोगिता की भेजी हुई दासी हाथ में मोतियों से भरा थाल लेकर उनके पीछे जा खड़ी हुई और मुट्ठी भर कर मोतियाँ पृथ्वीराज के हाथ में देती जाने लगी। अन्त में उसने थाल की सब मोतियां साथही अपने गलेके हार की मोतियाँ भी दे डाली और पृथ्वीराज ने उन सबों को गंगा में डाल दिया। जब मोती समाप्त हो गये, तो उसने अपने गलेमें पड़ी हुई पोत की लड़ी भी तोड़कर पृथ्वीराजके हाथमें देदी। अतः इस बार पोत देखकर पृथ्वीराज एकदम चौंक पड़े। अतःउन्होंने उसी समय पीछे घूम कर देखा और पूछा, उत्तर मिला—"जय-चांद की राजकन्या सयोगिता की दासी हूं। उन्हीं की भेजीहुई मैं यहां आपके पास आयी हूं।" इतना कहकर उसने इशारे से संयोगिता को दिखा दिया। उस समय संयोगिता एक महलके झरोखे में खड़ी होकर पृथ्वीराज की ओर टकटकी लगाये देख रही थी। संयोगिता को इस अवस्था में देखते ही प्रेमाकुल हो

पृथ्वीराज अपने आप को भूल गये। पृथ्वीराज ने उसी समय दासी को अपना यथार्थ परिचय दे दिया। दासी ने भी यह सब बातें संकेत ही से सहेलियां और संयोगिता को समझा दीं। जब सहेलियाँ जान गयीं कि यही पृथ्वीराज हैं तो उन्होंने आपस में सलाह कर के पृथ्वीराज को महल में बुला लिया। चंदकवि लिखते हैं कि पृथ्वीराज ने वहीं अपना संयोगिता से गंधर्व विवाह कर लिया था। अतः इस प्रकार दोनों प्रेमी-प्रेमिनी मिलकर बड़ेही आनन्दित हुए। किन्तु थोड़ी देर बाद ही जब पृथ्वीराज अपने निवासस्थान को लौटजाने को प्रस्तुत हुए उस समय विरहिणी संयोगिता स्वामी वियोग से बड़ी व्याकुल हो उठी। अपनी प्रियतमा की यह दीन दशा देखकर पृथ्वीराज बड़े असमंजस में पड़े।

एक तो पृथ्वीराज के हृदय मंदिर में संयोगिता की प्रेम-मयी मूर्ति पहले ही से विराज रही थी। दूसरे उसकी ऐसी दीन दशा देखकर पृथ्वीराज बड़ेही चंचल हो उठे। वे इसबात को भी अच्छी तरह जानते थे कि उनके सामंतगण इस समय शत्रुसेना से घिरे हुए युद्ध कर रहे हैं। अतः ऐसी अवस्था में उनका वहां उपस्थित रहना भी नितान्त आवश्यक है। इस कारण यहां ठहरना सरासर अनुचित है इतने हीं में उन्होंने देखा कि सामने से गुरुरामजी आ रहे हैं। उन्हें देखते ही पृथ्वीराज के मन में कुछ ढाड़स हुआ। असल में गुरुरामजी कन्ह के भेजे हुए उन्हीं को ढूंढने के लिये आरहे थे। उन्होंने

उसी समय गुरुराम को अपने पास बुलाकर सब हाल कह सुनाया। सुनकर गुरुराम बोले—"वाह! आपतो यहां अपनी प्रियतमा सुन्दरी के साथ प्रेम का आनंद लूट रहे हैं और वहां समरीराय तो स्वर्ग जा चुके साथही लखनराय, दुर्जन-राय, भीमराय-रघुवंशी, प्रतापराय, तोमर, रायसिंह बघेला सलखसिंह प्रमार और इन्द्रदमन आदि सामंत भी परलोक गमन कर चुके।"

इतना कह कर उन्होंने कन्ह का पत्र उनके हाथ में दिया। पत्र पढ़ते ही पृथ्वीराज शीघ्र ही वहां से चल पड़े।

रास्ते ही में उन्हें जयचन्द की सेना ने आकर घेर लिया। चारो ओर से उसके सैनिक पृथ्वीराज को पकड़ने के लिये उनकी तरफ टूट पड़े। परन्तु इस स्थान पर पृथ्वीराज ने ऐसी वीरता दिखाई कि शत्रुओं के छक्के छूट गये। गुरुराम ब्राह्मण होने पर भी तलवार पकड़ कर शत्रु सेना पर टूट पड़े अन्त में किसी प्रकार लड़ते झगड़ते पृथ्वीराज कन्ह के पास पहुंच गये।

पृथ्वीराज ने कन्ह को सब हाल कह सुनाया। सुनकर कन्ह ने कहा-भला यह आप क्या कर आये? दुलहिनको वहीं छोड़ दिया। यह काम आपने अच्छा नहीं किया। जिसका हाथ पकड़ लिया उसको कभी छोड़ना न चाहिये। आपको उचित था कि उसे अपने साथ ही ले आते।

इतना सुनते ही पृथ्वीराज पुनः लौट पड़े। साथमें उनके

गोयन्दराय तथा और भी कई सामन्त गये। अस्तु इस वार किसी प्रकार पुनः महल में घुस गये और संयोगिता को लेकर बाहर चले आये, इसके बाद अपने स्थान की ओर अग्रसर हुए। यह समाचार बात की बात में बिजुली की भांति चारो ओर फैल गई। अब क्या पूछना, जयचांद की क्रुद्ध सेना पृथ्वी-राज को पकड़ने के लिये उनकी ओर लपक पड़ी।

इसी समय कन्नौज राज्य का रावण नामक कोतवाल पृथ्वीराज को पकड़ने के लिये आगे बढ़ा। वास्तव में वह था भी वीर। कन्नौज में उसका बड़ा नाम था। अस्तु उसने उसी समय चारो तरफ यह घोषित कर दिया कि पृथ्वीराज संयोगिता को चुराये लिये जाता है, खबरदार वह जाने न पावे। जहां मिले पकड़ कर कैद कर लिया जाये।

उधर जयचांद ने भी अपनी समस्त सेना को रणसज्जा से सज्जित होने की आज्ञा दे दी। टिड्डीदल उसकी सेना चारो तरफ से हुंकार करती हुई वेग से युद्धसज्जा से सुसज्जित हो अग्रसर हुई। उसकी ऐसी विकट युद्ध योजना देखकर सबों को यही विश्वास हो रहा था कि आज पृथ्वीराज का कन्नौज से जीवित निकल जाना असंभव है। अस्तु रास्ते ही में जयचांद की सेना से पृथ्वीराज की फिर मुठभेड़ हो गयी। इस बार गोयन्दराय ने जो वीरता दिखायी वह प्रशंसनीय थी। वह दोनों हाथ में तलवार लेकर इस प्रकार शत्रु सेना को काट गिराने लगा जैसे कोई गाजर मूली काटता है। उस-

की इस प्रकार की मारकाट से जयचंद की सेना एकदम घबड़ा उठी । अतः बहुत देर तक वह इसी प्रकार अद्भुत युद्ध कौशल दिखाते रहे किन्तु अंत में हजारों योद्धाओं को मार कर वीर श्रेष्ठ गोयन्दराय वीरगति को प्राप्त हो गये । अब पज्जूनराय आगे बढ़ा । उसकी सहायता के लिये हरिएय कंठीर प्रमार, पीपाराय परिहार कई सामन्त अग्रसर हुए । पुनः युद्ध ने भयंकर रूप धरा और पज्जूनराय भी युद्ध करते २ परमधाम को प्राप्त हुआ । किन्तु उसकी वीरता से मुसलमानी सेना बड़ी ही क्षतिग्रस्त हुई ।

अब धीरे धीरे दिन का अन्त हो रहा था । सूर्य भगवान पश्चिम दिशा को जा चुके थे । किन्तु तौ भी युद्ध ने रुकने का नाम न लिया । वह उसी प्रकार बराबर चलता रहा । पज्जूनराय के बाद अबकी चांडमुण्डीर ने हाथ में कृपाण लिया वह मस्त हाथियों के दल में क्रुद्धसिंह की भांति शत्रु सेना में घुस पड़ा । उसके घुसते ही शत्रु सेना हाहाकार करती हुई छिन्न भिन्न हो गई । किन्तु हा ! इसी प्रकार अपनी भयंकर वीरता से शत्रु सेना के दांत खट्टे करते हुए वह भी संध्या होते २ मृत्यु की गोद में जा लेटा । इसी प्रकार धीरे २ कितने ही सामन्तों ने इस युद्ध में अपने प्राणों की आहुति दे दी । अंत में नरनाह कन्हराय की बारी आई । वह सिंह की भाँति गरजता हुआ युद्धभूमि में जा उतरा । आज के युद्ध में कन्ह की वीरता देखने योग्य थी । वास्तव में उसने शत्रुओं को

दिखा दिया कि युद्ध किस प्रकार किया जाता है। जिधर वह झपट पड़ता था उधर ही एकदम सफाई हो जाती थी। जिस वीरता से उसने युद्ध करके शत्रु दमन किया है उसका वर्णन रासो में पढ़ने योग्य है। चन्दकवि ने उसके पराक्रम की प्रशंसा करते हुए ऐसी ओजस्विनी भाषा में उसका वर्णन किया है—पढ़ते ही हृदय में वीररस लहर मार उठता है। लिखा है कि कन्ह वीर की तलवार की चोट से पीड़ित होकर शत्रु सेना के मेघ समान शरीर वाले हाथी चित्कार करते हुए मेघों ही की भांति गरज उठते थे और युद्धभूमि में लोट पड़ते थे।

इसी प्रकार धीरे २ सायंकाल का समय हो आया। तब भी वीरों की तलवार में विराम नहीं था। अब सब सामन्तगण संयोगिता सहित पृथ्वीराज को बीच में रखकर बैठ गये और विचार करने लगे कि अब क्या करना चाहिये? अन्त में सबों ने चन्दकवि को ही दोष देते हुए इस विपत्ति का मूल कारण ठहराया। कहा इसी भाट के कारण आज इतने सामंतों की प्राणाहुति हो गई। इस समय पृथ्वीराज के वीर सामन्तों की लाश पर लाश युद्धभूमि से ला २ कर रखी गई थी। विचारे पृथ्वीराज रो २ कर उन लाशों से चिपट पड़ते और शिर पटक २ कर कहते कि हाय! आज मुझ अभागे के कारण मेरे इतने राज के स्तम्भ स्वरूप वीर सामंतगण परलोक सिधारे! धिक्कार है मुझे! पृथ्वीराज को इस प्रकार विलाप करते हुए

देखकर कविचंद ने बहुत तरह से समझा कर कहा कि अब तो जो बात होने वाली थी सो तो हो ही गयी। उसके लिये खेद प्रकट करना व्यर्थ है। अब आगे का क्या कर्त्तव्य है, इसी पर विचार करना प्रयोजनीय है। इस समय जैसे भी हो महाराज सकुशल निकल कर दिल्ली पहुँच जायँ, यही करना हम लोगों को उचित है। इनके निकल जाने पर फिर तो हम लोग शत्रु सेना से निपट लेंगे, कोई डर नहीं है। यदि लड़ते २ युद्ध भूमि में मर भी जायँगे तो सीधे स्वर्गधाम को अपना निवास स्थान बनायेंगे। मारना या मर जाना ही तो वीरों का जन्म सिद्ध हक़ है। इसकी क्या चिन्ता है।

अस्तु इसी प्रकार अन्य सामंतों ने भी पृथ्वीराज को संयोगिता सहित दिल्ली ले जाने के लिये बहुत तरह समझाया, परंतु जितना ही वे लोग पृथ्वीराज को समझाते जाते थे उतना ही वे हठ पकड़ते जाते थे कि नहीं मैं आप लोगों को मृत्यु मुंह में छोड़कर कभी न जाऊंगा।" अंत में लाचार सामंत गण बड़े ही दुखित होकर चुप हो रहे।

इसी प्रकार विचार करते २ प्रातःकाल हो गया, पृथ्वीराज ने पुनः घोड़े की पीठ पर अपना आसन जमाया। संयोगिता को उन्होंने अपने पीछे बैठा लिया। इसके बाद सब सैनिक और सामंतगण उन्हें चारो ओर से घेर कर दिल्ली की ओर अग्रसर हुए। इधर कन्नौज की सेना भी उनका मार्ग अवरोधकर और उन्हें पकड़ लेने की इच्छा से बड़े वेग से हुंकार करती हुई

आगे बढ़ी ।

कन्नौज की सेना पृथ्वीराज को पकड़ना चाहती थी और उनके सामन्त लोग उनकी रक्षा किया चाहते थे । बस अपने इसी उद्देश्यों को सम्मुख रखकर दोनों ओर के वीरगण जान हथेली पर रख युद्ध कर रहे थे । इसी प्रकार युद्ध करते करते वे लोग आगे बढ़ते जाते थे, इसी रूप से बराबर दो दिन तक युद्ध होता रहा । पृथ्वीराज के सामंतगण उन्हें अपने घेरे में लिये हुए धीरे धीरे दिल्ली की ओर अग्रसर होते जाते थे । और जयचन्द की सेना बराबर उनका पीछा करती जाती थी । अन्त को इसी प्रकार युद्ध होते होते नरनाह वीरश्रेष्ठ कन्हराय भी परलोक सिधार गये । धीरे २ पृथ्वीराज के चौसठ सामन्त गणों ने इस युद्ध में अपना प्राण गँवाया । अस्तु अन्त में परिणाम यह हुआ कि अपने इतने राज्य के स्तम्भवीर सामतों को खोकर पृथ्वीराज दिल्ली पहुँच गये । इसके बाद संयोगिता के साथ विवाह कर अपनी प्रेमपिपासा मिटाई ।

संयोगिता हरण के सन् संवत् का कुछ भी ठीक पता नहीं लगता । हां इतिहासों के देखने से इतना अवश्य पता लगता है कि पृथ्वीराज का सब से बड़ा काम यह संयोगिता का हरण ही हुआ था । और साथ ही उनके भाग्योदय को यहीं से राहु ने ग्रसना आरंभ कर लिया था ।

—:o❀❀❀❀❀o:—

बीसवाँ प्रकरण।

अधःपतन का आरम्भ होना।

—:०:※※※:०:—

बस पाठक! भारत के सूर्योदय में ग्रहण लग गया। भारत का सौभाग्य सूर्य अस्ताचल को अग्रसर हुआ। अन्त में फूट डाइन ने न मालूम किस कुसाइत में भारत में पैर रखा था कि इसका सर्वनाश ही करके छोड़ा। मालूम होता है इसके भाग्य में फूट ही बदा था। यही कारण है कि यहां घर घर में फूटही का साम्राज्य परिस्थापित देखाई देता है। अस्तु, गत परिच्छेदों के पढ़ने से पाठक गण इस बात को भलीभांति जान गये होंगे कि पृथ्वीराज के समय से ही इस फूट डाइन ने कैसा भयंकर रूप धारण कर लिया था, आपस की फूट और विद्वेष की आग किस प्रकार घर घर फैली हुई थी। कलह और विग्रह के लोग किस प्रकार वशीभूत हो रहे थे, साथही देश की दुर्दशा और अधःपतन का प्रधान कारण उस समय क्या था, इसको भी पाठक लोग समझ गये होंगे। स्त्रियां तो विनाश की जड़ हुई हैं। साथही फूट देवी की सहचरी इस बहुपत्निकता ने भी भारत को दुर्दशाग्रस्त बना डालने में कम सहायता नहीं पहुंचाई है। इसी बुरे रोगने ही

पृथ्वीराज का सर्वनाश कर डाला था। हाय! इस बहुपत्निकता का विषाक्त कीड़ा यदि उस समय के क्षत्री समाज में न घुसा होता, इस बुरी प्रथा को यदि वे लोग आश्रय न देते तो आज वास्तव में भारतवर्ष का इतिहास स्वर्णाक्षरों में अपनी दिव्य छाया प्रकाश करता, यदि इस बहुपत्निकता के चक्कर में पड़कर पृथ्वीराज काम लोलुप न होते, तो अपने इतने अजेय सामन्तगण सैन्यबल तथा राजबल को खोकर ऐसी दुर्दशा को कभी प्राप्त न होते। यह बात पाठकों से छिपी नहीं है। वास्तव में पृथ्वीराज की असावधानी और इन व्यर्थ के रूप के प्रलोभनों में पड़कर कर्तव्य को भूल जाना ही उनके धनबल, जनबल, तथा सैन्यबल आदि नष्ट होने का प्रधान कारण हुआ है। यदि ऐसा न होता तो शहाबुद्दीन कभी भारत पर अपना प्रभुत्व जमाने में समर्थ न होता, यह अनिवार्य है। जितनी कुछ देश को हानि पहुँची है सब इसी सत्यानाशी फूटही के कारण पहुँची हैं, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। किन्तु साथही पृथ्वीराज की बहुपत्निकता के कार्य ने और भी आग में घी का काम कर डाला। रासो के देखने से विदित होता है कि पृथ्वीराज ने ग्यारह विवाह किये, और कोई भी विवाह ऐसा नहीं हुआ जिसमें दो चार हजार मनुष्यों की प्राणहानि न हुई हो। अब पाठक समझ सकते हैं कि केवल स्त्रियों ही के लिये व्यर्थ इतने शूरवीरों का प्राण नाश करवाना कहां तक उचित है! बस उस समय इस बहुपत्निकता और आपस की फूटने लोगों

पर अपना कितना अधिक प्रभाव डाल रखा था इसका ज्वलन्त उदाहरण देखना होतो यह पृथ्वीराज की जीवनी पाठक पढ़लें।

अब पृथ्वीराज के अधःपात का तीसरा कारण अहंकार का उत्पन्न होना भी माना जा सकता है। कारण शहाबुद्दीन को बार २ परास्त करने और सारी लड़ाइयों में विजय पाने से उनका बल-मद कुछ विशेष रूप में बढ़ गया था। राजमद और बलमद के अतिरिक्त सबों से बड़ा उनमें प्रेममद अधिक था। बस इसी ने उनकी दुर्दशा कराने में सब से अधिक हाथ बढ़ाया था, हाय! यदि एक तुच्छ बनिता-वेश्या के असार प्रेममें पड़कर कैमास ऐसे वीर राज्य केशुभचिन्तक मंत्री की वे हत्या न कर डालते, राजमद में मतवाले बनकर स्त्री प्रेम में प्रलुब्ध न होते, विवेक ज्ञान से रहित होकर चामुण्डराय पर व्यर्थ ही अत्याचार के बादल न बर्साते, यदि संयोगिता के साथ २ अन्य भी राजकुमारियों के रूप की प्रशंसा सुनकर काम मदमत्त न बन जाते, मैं क्या कर रहा हूं इसका परिणाम क्या होगा, इसमें राज्य शासन की व्यवस्था में कितनी शृंखला आ जायेगी, इन सब विषयों पर यदि वे कुछ भी ध्यान देते तो इस प्रकार शोचनीय अवस्था को प्राप्त होकर उन्हें अपने प्राणों से हाथ धोना न पड़ता। एक केवल संयोगिता ही के कारण उन्हें ऐसे २ अजेय वीर सामन्तों से हाथ धोना पड़ा जिनके ही बल के भरोसे उनका साम्राज्य स्थित था। वास्तवमें कन्ह, गोयन्दराय, जोहाना अजानुबाहु, चंडमुण्डीर पज्जून-

राय कोई सामान्य वीर नहीं थे। इनके द्वारा राज्य और देश की किस प्रकार रक्षा हुई थी, इसका अनुमान पाठक सहजही कर सकते हैं। इतने वीरगण बांकुरे, देश रक्षकों के होते हुए भी पृथ्वीराज ने देश को रसातल में पहुंचा दिया। और सदा के लिये भारत को प्रतंत्रता कीबेड़ी में जकड़ जाना पड़ा। हा शोक! विधि की विडम्बना को कौन जान सकता है?

खैर यहां तक तो जो कुछ होना था हो ही गया था। किन्तु फिर भी आजकल के समान भारतवर्ष वीरों से रहित हो नहीं गया था। उस समय भी लोगों में पूर्ण गौरव का जीवन था। शस्त्रबल था, आत्मरक्षा, और देश की रक्षा के उपयोगी सभी साधन विद्यमान थे। तब तक भी भारतभूमि में स्वतंत्रता विराज रही थी। अतः संयोगिता के जाने के बाद भी उसके प्रेम में एक बारगी ही मुग्ध न होकर पृथ्वीराज अपने कर्तव्य को हाथसे न जाने देते, देश की दशापर ध्यान देते, अपने राज्यशासन के बागडोर को ढीला न करते, नवीन कर्म-चारियों और सामन्तों पर राजकार्य भार छोड़कर विलासिता की धार में प्रवाहित न होते तो अपने चिरशत्रुओं द्वारा पृथ्वी-राज कभी पददलित न होते।

संयोगिता को कन्नौज से उठा लाते ही पृथ्वीराज एक बारगी ही उसके प्रेम से उन्मत्त हो अपने को भूल बैठे। साथ-ही कर्तव्य से पराङ्मुख हो राज्य का निरीक्षण भी उन्होंने छोड़ दिया। बचे हुए सामंतों को भी उनका दर्शन दुर्लभ हो

गया। अतः राज्य शासन में बड़ी विश्रृंखलता उत्पन्न होगयी। अपने राजा के दर्शन के लिये प्रजा व्याकुल हो उठी।

इस समय जैतराय ही मंत्री का कार्य कर रहा था। निस्संदेह वह एक वीर तथा कर्तव्यपरायण पुरुष था। किन्तु इससे हो ही क्या सकता था? जब स्वयं राजाही राज्य संरक्षण की ओर ध्यान नहीं देता तो फिर दूसरे की क्या बात है? अतः राज्य की ओर से पृथ्वीराज बिल्कुल ही उदासीन हो गये थे। धीरे २ कर्मचारियों में मनमानी घरजानी होने लग गई थी। इधर तो राज्य में ऐसी गड़बड़ी हो रही थी और उधर पृथ्वीराज महल में संयोगिता के साथ रसकेलि कर रहे थे।

यह तो पाठक जानते ही होंगे कि शहाबुद्दीन सदा इसबात की ताक में लगा रहता था कि किस प्रकार और कैसे पृथ्वीराज से अपना बदला चुकावें। उसे अपने गुप्तचरों द्वारा बराबर दिल्ली के प्रतिक्षण का समाचार मिलता रहता था। अतः इस बार उसने यह भी सुन लिया कि पृथ्वीराज राज्य संरक्षण की ओर से एकदम उदासीन हो गये हैं। इस समय वह महलों में रमणी के साथ खूब आनन्द मनाने में हो लगे हुए हैं। उनके प्रधान २ वीर सामन्त गण भी परलोक सिधार चुके हैं। इस समय तो पृथ्वीराज स्त्रियों के गलें का हार होकर कर्तव्य को हाथ से खो बैठे हैं।

भला ऐसा सुअवसर पाकर भी शहाबुद्दीन चुप रहसकता था। वह तो चाहता ही था कि कोई मौका मिले और उन्हें

धर दवावें। अस्तु, दिल्ली की विश्रृंखलता का हाल पूरा २ सुनते ही उसने सैन्य-संग्रह करना आरंभ कर दिया। और शीघ्रही एक भारी यवन सेना लेकर वह दिल्ली की ओर चल पड़ा। उधर जयचांद भी पृथ्वीराज के प्राणों का ग्राहक होरहा था। अतः दलवल सहित उसने भी इस वार शहावुद्दीन का साथ दिया और भारत के लिये घोर संकट का समय उपस्थित हो गया। ज्योंही यह समाचार दिल्ली पहुँचा त्योंही सव के सव व्याकुल हो उठे। प्रजागणों में हाहाकार मच गया। हाहाकार मचता नहीं तो और क्या होता? हाय! जो देश का संरक्षक विलासिताके सागरमें गोता लगा रहा हो, उसे देश की और अपनी प्रजा की कव चिन्ता हो सकती है। अस्तु विचारी प्रजा ने वहुत चाहा कि अपने राजा को प्रेम निद्रा से जगाकर सचेत करें। किन्तु नग्गाड़े के आगे तूती की आवाज कौन सुने? फिर वहां तक किसी की पहुँच ही होने नहीं पाती थी। न मालूम किस कुसाइत में संयोगिता ने जन्म लिया था कि देश को इक वारगी ही दुरावस्था में पतित हो जाना पड़ा।

उनके वचे खुचे सामंत लोग वरावर इस वात का उद्योग करते जा रहे थे कि किसी प्रकार महाराज को अव भी ज्ञान हो जाय। अव भी वे अपने देश की दशा पर दृष्टि डालें। इसी आशा से लोगों ने कई वार उनके पास पत्र भी भेजे। परंतु वे सव पत्र उनके पास पहुँचने ही नहीं पाते थे, वीचही में गुमहो जाते थे। इसी कारण उन्हें राज्य का कुछ भी समाचार प्राप्त

न होता था। दुर्दिन के समय सभी बातें विपरीत हो जाया करती हैं, अंत में किसी प्रकार चंद का भेजा हुआ एक पत्र पृथ्वीराज को मिला। जिसमें लिखा था कि यहां तो तुम महलों में प्रेम का आनन्द लूट रहे हो और उधर शहाबुद्दीन दलबल सहित दिल्ली पर पहुँचना ही चाहता है। किन्तु उस समय वह नारीप्रेम में फंसकर हतबुद्धि से हो रहे थे। उन्होंने समझा, मेरे आनन्द में यह बाधा कहां से आ पहुंची? बस पढ़ते ही उन्होंने फाड़कर फेंक दिया।

उसी दिन रात को पृथ्वीराज ने एक भयंकर स्वप्न भी देखा था। उससे उनका चित्त बड़ा ही चांचल हो रहा था। यह स्वप्न उनके भविष्य के अधःपतन की सूचना थी, जिससे पृथ्वीराज का प्रेमी हृदय भी भयाकुल हो रहा था।

अब शीघ्रही पृथ्वीराज को अकर्मण्यता और राज्य की विशृंखलता का समाचार रावल समरसिंह के पास भी पहुँच गया। वे सुनकर बड़े दुखी हुए। कहा जाता है कि वैसाही एक दुःस्वप्न समरसिंह जी ने देखा था। जिससे भारत दुर्दशा की भविष्य सूचना उन्हें पूर्णरूपेण मिल गई थी। एक प्रकार से उन्हें विश्वास भी हो गया था कि अब शीघ्रही भारत परा- धीनता का हार गले में डाल लेगा। इसीलिये दिल्ला की दुरावस्था का समाचार सुनतेही वे घबड़ा उठे और उसी समय अपने पुत्र को गद्दी पर बैठा विपुल सेना सहित पृथ्वी- राज की सहायता के लिये चल पड़े। कारण कि उन्हें यहीभी

खबर मिल चुकी थी कि शहाबुद्दीन का आक्रमण शीघ्रही भारत पर होने।

दिल्ली में आकर वहां की जो दशा उन्होंने देखी, उससे वे अवाक रह गये। वे दिल्ली में आ तो गये, पर उनका स्वागत आदर सत्कार करे तो कौन? पृथ्वीराज को अपने प्रेमानन्द से फुर्सत नहीं। वरन संभव है, उन्हें इसका समाचार भी न मिला हो। चंदकवि लिखते हैं कि इस वार संयोगिता हीने स्वयं उनका यथेष्ट स्वागत किया था। परन्तु यह बात बिल्कुल झूठ मालूम होती है। संयोगिता उनका स्वागत करे और पृथ्वीराज को इसकी कुछ भी खबर न हो? असंभव।

चित्तौड़ से चलते समय भारत का भविष्य दुरदर्शी समर-सिंहजी ने पहले ही अंधकारमय देख लिया था। इसी कारण उन्होंने चित्तौड़ की गद्दी पर अपने पुत्र करणसिंह को बैठाकर इधर का मार्ग लिया था। परन्तु उन्हें यह नहीं मालूम था कि अवस्था यहां तक पहुंच गयी है। अतः रावल समरसिंह जी के दिल्ली में आने के कई दिनों के वाद पृथ्वीराज को इसकी खबर लगी। तब वे लाचार अन्यमनस्क भाव से उनसे मिलने गये थे। पहले तो उन्होंने उन्हें जल्दी विदाई देकर चलता करना चाहा। किन्तु समरसिंह जबर्दस्ती अपने हठ से रह गये। इसमें उन्होंने अपना कुछ भी अपमान न समझा। क्योंकि वे जानते थे कि समय इस समय बिल्कुल ही प्रतिकूल हो रहा है। वे बड़े ही दुरदर्शी और बुद्धिमान थे। देश की

ऐसी बिगड़ती अवस्था देखते हुए भी अपने मानापमान की ओर ध्यान देना उन्होंने उचित न समझा। बड़े ही मीठे मीठे शब्दों में उन्हें अच्छी तरह फटकारते हुए उन्होंने पृथ्वीराज को धिक्कारा। फिर पिता की तरह उपदेशप्रद बातों से उन्हें समझाया, धैर्य धराया। ऊँच नीच दिखाकर उन्हें मोह की नींद से जगाया। उस समय वही वीर पृथ्वीराज एक प्रकार से निरुपाय हतोत्साह से हो रहे थे। शहाबुद्दीन के दिल्ली की ओर चढ़ आने का समाचार, समरसिंह जी का एकाएक आगमन इन सब कारणों से पृथ्वीराज का वीर हृदय भी भय से कांप रहा था। अब पृथ्वीराज को अपनी भूल सूझ रही थी मनही मन उन्हें अपनी अकर्मण्यता पर बहुत ही पश्चात्ताप हो रहा था। किन्तु अब उपाय ही क्या था? "समय बीति पुनि का पछतानें?" परन्तु नहीं अभी भी समय था। उद्योग करना ही पुरुषों का धर्म है। फलाफल ईश्वर के हाथ है। अस्तु पृथ्वीराज समरसिंह की बातों से बड़े ही लज्जित हुए। अन्त में उन्होंने अपने भग्न हृदय में साहस बटोर लिया और समरसिंह जी के उपदेशानुसार कार्य करने को वे कटिबद्ध हो गये।

शायद पाठक! भूले न होंगे, कि चामुण्डराय को पृथ्वीराज ने क़ैद कर रखा था अतः समरसिंह जी ने पहले चामुण्डराय को क़ैद से मुक्त करने के लिये कहा। उनकी यह आज्ञा सादर स्वीकार कर पृथ्वीराज ने उसी समय पुरोहित गुरुराम को बुला भेजा और उन्हीं के हाथ पगड़ी और तलवार

चामुण्डराय के पास भेजनी चाही। किन्तु समरसिंह जी उन्हें रोककर स्वयं अपने साथ चामुण्डराय के पास उन्हें ले गये। किन्तु वहां पहुँचने पर लज्जावश पृथ्वीराज उनके सामने जा न सके। गुरुराम को भेजकर हथकड़ी बेड़ी से मुक्त करना चाहा। परन्तु किसी प्रकार भी चामुण्डराय इस पर राजी न हुए। तब लाचार समरसिंह के साथ पृथ्वीराज ने स्वयं जाकर चामुण्डराय की हथकड़ी बेड़ी अपने हाथ से खोली, और तलवार उनकी कमर में खोंसकर उत्साहित किया। चामुण्डराय हर्ष से गद्गद हो गये।

चामुण्डराय के कैद से मुक्त होने की बात उसी समय नगर भर में फैल गई। दिल्ली के अधिवासीगण इस समाचार से बड़े ही प्रसन्न हो उठे।

दूसरे ही दिन बड़े ठाट से पृथ्वीराज का दर्बार लगा। सब वीरगण बैठकर इस बात पर विचार करने लगे कि अब क्या करना चाहिये। बहुत सोच विचार के बाद यही निश्चित हुआ कि राज्य का भार कुमार रेणुसिंह पर छोड़ कर युद्ध के लिये शीघ्र चल पड़ना चाहिए।

बस इसी के अनुसार सब लोग रणसज्जा से सुसज्जित होकर प्रस्तुत हो गये। विधाता जब वाम होता है, तब अपने भी पराये हो जाते हैं। ऐसे संकट के समय अकस्मात् एक वीर सामन्त किसी बात में पृथ्वीराज से चिढ़कर शत्रु की ओर जा मिला। अस्तु,

शीघ्रही सब सैन्य दलों को साथ लेकर वीर समरसिंह और पृथ्वीराज धर्मयुद्ध के लिये तरायन के युद्ध स्थल की ओर चल पड़े। आज वीरपत्नी संयोगिता ने अपने हाथ से पृथ्वीराज को रणसज्जा से सुसज्जित किया था। आज उसका कोमल हृदय भीतर ही भीतर कांप रहा था। मानों उसे ऐसा भास होता था कि पतिदेव के साथ उसका यही अंतिम मिलन है। तौभी अपने मन की अधीरता किसी प्रकार भी उसने प्रकट होने न दी कारण कि उसे पूर्ण विश्वास था कि यदि पृथ्वीराज विजयी होकर लौट आये तो सहर्ष उनके गले विजय-माल पहना कर आरती उतारूंगी। अन्यथा अपने वीरगति प्राप्त स्वामी से अवश्य सूर्य्यलोक में जाकर मिलूंगी। अहा! निसंदेह वीरनारियों का ऐसाही दृढ़ विचार होना चाहिये। किन्तु शोक! समय के फेर से आज उसी वीर जननी भारत वसुधरा की जो विकृतावस्था हो गई है उसे देख २ कर आंखों में आंसू भर आते हैं।

अस्तु जो हो, पृथ्वीराज शत्रुओं का सामना करने के लिये युद्ध क्षेत्र की ओर प्रस्थानित हुए। आपस में सबों ने यही निश्चय किया कि पानीपत के मैदान ही में शहाबुद्दीन को रोक लेना चाहिए। अतः इधर से पृथ्वीराज और उधर से शहाबुद्दीन गोरी दोनों दलबल सहित बढ़ते हुए एकही स्थान पर आ पहुँच गये। शीघ्रही तरायन के मैदान में दोनों दलों ने अपना २ डेरा भी डाल दिया।

इस बार शहाबुद्दीन ने पुनः कूटनीति से काम लिया। उसने पहले पत्र भेजकर पृथ्वीराज को यह कहलवा भेजा कि तुम इस्लामधर्म ग्रहण करके राज्य का कुछ अंश कर स्वरूप हमें दे दो। हम लौट जायेंगे। किन्तु पृथ्वीराज ने इसपर उसके भूतपूर्व कार्य की ओर ध्यान दिलाते हुए बार २ हार खाने की बात सुनाई और बड़े ही जोशीले शब्दों में पत्र का उत्तर देते हुए उसे शीघ्र लौट जाने के लिये कहा। तब उसने पृथ्वीराज को कपट जाल में फँसाने की इच्छा से एक दूसरी ही चाल चली। उसने उत्तर दिया कि हम तो राजा नहीं हैं। राजा हमारे भाई हैं। उन्हीं की आज्ञा से हम सेनापति बनकर ही केवल लड़ने आये हैं। अतः उनकी आज्ञा के विपरीत हम कोई भी काम नहीं कर सकते। इसलिये आप हमें कुछ दिन का समय दे दें तब तक पत्र भेज कर सब हाल उन्हें जना देंगे। आप जब तक वहां से उत्तर न आवे तब तक युद्ध बन्द रखें।

और किसी को उसके इस उत्तर पर भले ही विश्वास हो गया हो किन्तु कूटनितिज्ञ समरसिंह जी को रत्ती भर भी विश्वास न हुआ। अतः उन्होंने उसी समय अपनी सेना को तय्यार हो जाने की आज्ञा दे दी। राजपूत सेना उसी दम अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित होकर तय्यार हो गई। परन्तु मुहम्मदगोरी की ओर से कोई भी लक्षण आक्रमण का दिखलाई न पड़ा। राजपूत लोग बिना शत्रु को सचेत किये कभी आक्रमण नहीं करते। एकाएक शत्रु पर टूट पड़ने को राजपूत अधर्म युद्ध सम-

झते थे। अपनी इस सनातनी प्रथा के कारण हिन्दुओं को कई बार शत्रुओं से हार भी खानी पड़ी थी। रासो में लिखा है इस बार के युद्ध में शहाबुद्दीन की ओर दस लाख और पृथ्वीराज की ओर तिरासी हजार सेना थी। अब यह सैन्य संख्या कहाँ तक ठीक है ईश्वर ही जाने। विन्सेंएटस्मिथ साहब लिखते हैं कि मुसलमानों की सैन्य संख्या केवल बारह हजार थी। उसी बारह हजार सेना ने सन् ११९२ ई० में पृथ्वीराज को पराजित किया था। उस समय पृथ्वीराज के सभी सैन्यगण हतोत्साह हो रहे थे। वह अपने जीवन की आशा को पहले ही त्याग चुके थे। अस्तु,

जो कुछ भी हो, दोनों ओर की सेना सुसज्जित होकर कागर नदी के तट पर खड़ी हो गई और अपने २ स्वामी की आज्ञा की बाट देखने लगी। रावल समरसिंह जी बड़े ही उत्साहपूर्ण बचनों से अपनी सेनाओं को उत्तेजित करतेहुए सेना निरीक्षण के कार्य में लगे हुए थे। इसी प्रकार देख रेख करतेर सारा दिन बीत गया। बर्सात की अँधेरी रात ने काली चादर तान ली। दोनों ओर के सैन्य गण लाचार अपने २ डेरे पर लौट आये। पृथ्वीराज की सेना अपने शिविर में निश्चिन्त होकर बैठी हुई थी यवन सेना अभी आक्रमण न करेगी। क्योंकि उसे शहाबुद्दीन के पत्र पर विश्वास हो गया था। इसी समय राजपूतों को विश्वास दिलाने के लिये मुहम्मद गोरी ने एक और भी चाल चली। रात होते ही अपने तम्बुओं के आगे

आग जलाये रहने की आज्ञा दी। जिससे हिंदुओंको विश्वासहो जाय कि मुसलमान सेना अभी आक्रमण न करेगी। और यही हुआ भी। इस प्रकार मुसलमानी पड़ाव में रात के समय आग जलता देख हिन्दु सेना को और भी विश्वास हो गया और निश्चिन्त होकर अपने खेमों में विश्राम करने लगी। वस इधर तो शहाबुद्दीन ने इस प्रकार राजपूतों को धोखे में डाल रखा और उधर झट अपनी सेना को तय्यार होने की आज्ञा दे दी। अतः रात भर में सारी यवन सेना को सुसज्जित करा कर सवेरा होते ही जिस समय कि पृथ्वीराज की सेना नित्य कर्म से भी निपटने न पाया थी कि एकाएक अतर्कित भाव से शहाबुद्दीन हिंदुओं पर टूट पड़ा। एकाएक इस प्रकार शिर पर विपत्ति घहराते देखकर भी हिन्दु सेना विचलित न हुई। उसी अवस्था में डटकर यवनों का सामना करने को प्रस्तुत हो गयी। अब धीरे २ जमकर युद्ध होने लगा। रावल समरसिंह और पृथ्वीराज घोड़े पर सवार होकर अपनी सेना की देखरेख घूम २ कर करने लगे। थोड़ी ही देर में दोनों ओर के सैनिक गण लड़तेर इस तरह आपस में जूझ गये कि दोस्त-दुश्मन की पहचान तक किसी को न रही। खूब युद्ध हुआ किंतु दुर्भाग्यवश धीरे २ हिंदू सेना का बल घटता जाने लगा। इसी समय लड़ते २ एकाएक एक स्थान पर पृथ्वीराज बहुत से यवनों के बीच जा पड़े। यद्यपि उन्होंने बहुतों को मार गिराया तथापि वे इस प्रकार दुश्मनों से घिर गये थे कि उन्हें

वहां से निकल आना कठिन हो गया। यह देख जैतराय ने शीघ्रता से एक कूटनीति का अवलम्बन किया। उसने झट पृथ्वीराज के शिर का छत्र उतार कर अपने मस्तक पर रख लिया। और दुश्मनों को मारते २ आप भी युद्ध में सदा के लिये सो गया। चामुण्डराय ने भी बड़ी वीरता से युद्ध किया किंतु वह भी अंत में शत्रु के हाथ मारे गये। गुरुराम भी परलोक सिधारे। राजपूतों ने अपना पराक्रम दिखाने में कोई कोर-कसर न छोड़ा। प्राणों की ममता त्यागकर शत्रुदल में पिल पड़े किंतु आज के युद्ध में भारत-स्वतंत्रता रूपी सूर्य सदा के लिये अस्त होने वाला था। इस कारण थोड़ी ही देर में बहुत से वीर सैनिकों के साथ युद्ध करते २ समरसिंह जी भी वीरगति को प्राप्त हो गये। इसके बाद संध्या होते २ चौहान वीर विलासिता प्रिय, रमणियों के कण्ठहार पृथ्वीराज भी यवनों के हाथ बन्दी हो गये। बस भारत का सौभाग्य सूर्य सदा के लिये अस्त हो गया।

इसके बाद चंदवरदाई के कथनानुसार शहाबुद्दीन ने पृथ्वीराज को गजनी लेजाकर कारागार में डाल दिया। पहले तो पृथ्वीराज ने अपने छुटकारे के अनेकों प्रयत्न किये; किंतु जब किसी प्रकार भी सफल मनोरथ न हुए तब उन्होंने लाचार भोजन पानी करना छोड़ दिया। उनका यह हाल देख शहाबुद्दीन स्वयं उन्हें समझाने गया। किंतु शहाबुद्दीन को देखते ही लाल २ आंखों से तरेर कर उन्होंने उसकी ओर क्रोध से ताका और अनेकों दुर्वाक्यों से लगे उसे फटकारने। इस पर

क्रोधित हो उसने उनकी दोनों आंखें निकलवा ली। इस प्रकार नेत्र हीन होने के कारण उन्हें अपनी निर्बुद्धिता पर बड़ा पश्चाताप हुआ। अपनी विगत भूलों का स्मरण कर २ वे अपने को धिक्कारने लगे। हाय? व्यर्थ एक वेश्या के कारण वीरवर कैमास ऐसे सुयोग्य मंत्री को मार डाला। बहुपत्निकता के फेर और विलासिता में पड़कर निरर्थक ही अपने अगणित वीर सामंतों को मरवाया और अंत में संयोगिता के रुप जाल में इस प्रकार फँस गया कि राज्य शासन तक छोड़ दिया।

इधर पृथ्वीराज इसी प्रकार मनहीमन पश्चात्ताप कर रहे थे। और उधर जब युद्ध समाप्त हो गया तब कविचन्द अपने घर से किसी प्रकार बाहर निकला और सीधे गज़नी पहुँच गया। गज़नी पहुँच कर उसने बड़ी कठिनता से शहाबुद्दीन से भेंट की। इसके बाद अपनी वाक्चातुरी से गोरी को प्रसन्न कर उसने पृथ्वीराज से भेंट करने की आज्ञा प्राप्त कर ली। कारागार में जाकर पृथ्वीराज की जो दुर्दशा उसने देखी उससे उसके नेत्रों में आंसू भर आया, मारे शोक के वह अधीर हो उठा। बस उसी समय उसने अपने मन में निश्चय कर लिया कि दुष्ट शहाबुद्दीन से बिना इसका बदला चुकाये कभी न छोड़ेंगे।

अतः कविचंद ने अपनी वाक्चातुरी के जाल में शहाबुद्दीन को अच्छी तरह फँसा कर एक दिन बातों ही बातों में पृथ्वीराज की प्रशंसा करते हुए उनके शब्दवेधी बाण मारने की

बात छेड़ दी। और कहा कि वह इस विद्या में पूर्ण सिद्धहस्त है चाहे तो आप भी उनकी यह करामात देख सकते हैं। अतः शहाबुद्दीन को भी पृथ्वीराज के द्वारा शब्दवेधी बाण मारने का तमाशा देखने की बड़ी उत्कट इच्छा हुई। यद्यपि उसके अन्य मंत्रियों ने इसके लिये मना किया, किन्तु चन्द बरदाई की बातों से उसका कौतूहल इतना अधिक बढ़ गया था कि उसने उसी दम आज्ञा देदी।

अब पृथ्वीराज को अच्छा २ पौष्टिक पदार्थ भोजन के लिये दिया जाने लगा। कारण कि इस समय पृथ्वीराज बहुत ही दुर्बल हो रहे थे। जब कुछ समय के बाद उनमें पूर्व शक्ति आ गयी तो एक तमाशे का आयोजन होने लगा। इसके लिये एक बहुत बड़ा सा अखाड़ा (रंगालय) तय्यार किया गया। सब ठीक हो जाने पर अंधे पृथ्वीराज रंगालय में ला कर खड़े कर दिये गये। इस तमाशे का क्या उद्देश्य है, इसे पृथ्वीराज को चंदकवि ने गुप्त रीति से चुपचाप पहले ही समझा दिया था। उसने शहाबुद्दीन को भी कह दिया था कि जब तक आप हुक्म न देंगे पृथ्वीराज बाण न छोड़ेंगे। रंगालय में एक ओर सात तवे लटकाये गये। सब ठीक होतेही पृथ्वीराज के हाथ में धनुष बाण दिया गया। किन्तु ज्योंही उस पर बाण चढ़ा कर उन्होंने खींचा त्योंही धनुष टूट कर दो टुकड़ा हो गया। तब अन्त में उनके हाथ में उन्हीं का धनुष दिया गया। अपना धनुष पाते ही पृथ्वीराज का वीर हृदय आनन्द से उछल उठा।

बस उसके हुंकारते ही दूसरे वाण ने उसका तालु फोड़ कर उसे निर्जीव तख्त से नीचे गिरा दिया।

बस कालग्रस्त शहाबुद्दीन ने वाण छोड़ने की आज्ञा देदी। इसी समय चन्द्रकवि ने बड़ी ही ओजस्विनी कविता में पृथ्वीराज को उत्साहित करते हुए कहा अर्थात् आप के हाथ में शस्त्र, सामने तवे और बांई ओर शाह बैठा हुआ है अब अपने हृदय को कड़ा करके यह सुअवसर हाथ से जाने न दीजिए शत्रु-साधन का यह समय बड़ा ही उपयुक्त है।

पृथ्वीराज इस समय वीर भाव से अकड़े हुए खड़े थे। चारों ओर शत्रुओं की उत्कंठित आँखे उन्हीं पर लगी हुई थीं। अतः वे बड़ेही जोश के साथ शहाबुद्दीन की आज्ञा की वाट देख रहे थे। बस शहाबुद्दीन की आज्ञा पातेही शब्द को लक्ष्य करके उन्होंने वाण छोड़ा। पहले तवे पर लगा। इस पर शहाबुद्दीन ने हुँकार किया। बस उसके हुंकारते ही दूसरे वाण ने उसका तालू फ़ाड़ कर उसे निर्जीव तख्त से नीचे गिरा दिया।

इस प्रकार शहाबुद्दीन थोड़े समय तक हाथ पैर पटकता हुआ सदा के लिये शान्त हो गया। लोग हाहाकार करते हुए उन्हें मारने के लिये उनकी ओर टूट पड़े। परन्तु पलक मारते में चन्द कवि ने अपनी कमर से छुरी निकाल कर अपनी छाती में भोंक ली और फिर छुरी पृथ्वीराज को दे दी। पृथ्वीराज ने भी शीघ्रता से उसी छुरी द्वारा अपना नश्वर जीवन समाप्तकर लिया। सब मुँह ताकते रह गये।

दीप निर्वाण।

पृथ्वीराजके देहावसान के साथही साथ भारत स्वतंत्रता का भी अवसान हो गया। जिस समय पृथ्वीराज का मृत्यु समाचार दिल्ली में पहुँचा उस समय सारी नगरी शोक से व्याकुल हो उठी। पिथोरागढ़ का दुर्ग भयंकर शोक का आगार बन गया। रनिवास में कुहराम मच गया। प्रजागण विह्वल हो आर्तनाद करने लगे। रानियों की क्रन्दन ध्वनि से महल गूंज उठा फिर शत्रुओं के भय से और भी दिल्ली के अधिवासी गण व्याकुल हो उठे। प्रतिक्षण शंकित चित्त से शत्रुओं के आने की राह लोग देखने लगे। सभी इस आशंका से थर थर कांपने लगे कि अब वास्तव में यवनों के पदाघात से पददलित हो दिल्ली नगरी श्मशान भूमि बन जायगी। अन्त में ईश्वर की प्रेरणा से वही हुआ भी। अपने पतिदेव वीर-वर पृथ्वीराज की मृत्यु का समाचार पाते ही उनकी अन्य रानियों के साथ २ संयोगिता ने चिता में देह जला कर पति का अनुसरण किया। रावल समरसिंह की धर्मपत्नी, पृथ्वीराज की बहिन पृथा कुमारी भी चितारोपण कर पतिदेव से मिलने के लिये सुरपुर सिधारी। इस तरह पृथ्वीराज का विलास भवन चिता की राख में देखते २ परिणत हो गया।

बस इसके बादही हुँकार करती हुई यवन सेना टिड्डीदल की तरह दिल्ली नगरी में आ घुसी। यद्यपि रेणुसिंह ने बड़ी

वीरता से यवनों का सामना किया। किन्तु मुट्ठी भर से भी कम सेना से कब तक लड़ सकता था? शीघ्रही वह भी पतंग की भांति यवन समराग्नि में जल कर परलोकवासी हो गया। अब क्या था? दिल्ली नगरी निर्दयता के साथ यवनों द्वारा लूटी जाने लगी। स्थान २ पर नगरवासी लोग मारे जाने लगे। कितने ही हिन्दू-नर नारियों को दासता की जंजीर में जकड़ जाना पड़ा। कितने ही जबर्दस्ती मुसलमान बनाये इसी प्रकार देखते २ छन भर में ऐश्वर्यशाली दिल्ली नगर को यवनों ने नष्ट भ्रष्ट कर श्मशान भूमि बना डाला।

दिल्ली को ध्वंस करके ही यवनों की पिपासा नहीं मिटी। उसने धीरे २ अन्यत्र भी अपना विस्तार फैलाना आरंभ किया। यह आग भारत के चारों तरफ फैल गयी। जिसकी लपट ने देश का शत्रु, जातिद्रोही जयचन्द को अछूता न छोड़ा। वह भी इसी आग में जल कर भस्मीभूत हो गया। भारत का अधःपतन पूर्ण रूप से हुआ। इसकी सौभाग्य-श्री सदा के लिये लुप्त होगई। साथही देश गुलामी की बेड़ी पहन. जीवित ही मृतावस्था को प्राप्त हो गया। अस्तु,

अब दिल्ली को उजाड़ने के बाद शहाबुद्दीन ने कन्नौज की ओर पैर बढ़ाया। शीघ्रही कन्नौज पर भी उसका अधिकार हो गया। चन्दावर नामक स्थान में जयचंद और मुहम्मद गोरी की मुठभेड़ हो गयी। यवनों द्वारा जयचंद पराजित हो कर मार डाला गया। अतःकन्नौज को लूट कर शहाबुद्दीन ने पुनः

बनारस में आकर लूट पाट मचाना आरंभ किया। कहते हैं है १४००० ऊँटों पर लूट को माल लदवा कर वह अपने देश ले गया था।

विन्सेण्ट स्मिथ साहब लिखते हैं कि दिल्ली और कन्नौज को शहाबुद्दीन ने सन् ११९३ से ११९४ के बीच लूट पाट कर उजाड़ डाला। इसके पश्चात् बनारस को उसने अपने अत्याचार का लक्ष्य बनाया। सन् ११९६ में ग्वालियर पर मुसलमानी अमलदारी हो गई। और सन् ११९७ ई० में गुजरात की राजधानी अहिलवाड़ा पूरी तरह से यवनों द्वारा रौंदी जाकर विनष्ट हो गई।

बस पाठक! हमारे वीर चरित-नायक की जीवनी इसी प्रकार दुखमयी घटनाओं के साथ समाप्त होती है। तबसे भारत जो गिरा फिर अपने आप उठ बैठने की उसमें शक्ति नहीं आयी। उसका सौभाग्य सूर्य सदा के लिये अस्त हो गया।

※ इति ※